तृतीय अध्याय

'गिरिराज किशोर के नाटकों में समाज-जीवन'

तृतीय अध्याय

'गिरिराज किशोर के नाटकों में समाज-जीवन'

समाज विश्वव्यापक है। जीवन और समाज का घनिष्ट संबंध रहा है। मानव सामाजिक प्राणी है। इस अर्थ में प्रत्येक मानव का जीवन सामाजिक है। अतः समाज को प्रायः मानव संबंधों का जाल कहा जाता है। समाज से ही साहित्यकार का निर्माण होता है।

साहित्य में प्रत्यक्ष जीवन और समाज के साथ मानव के अंतरंग जीवन के सामंजस्य का चित्रण किया जाता है। साहित्य द्वारा व्यक्ति के विचार प्रवाह में बदलाव आता है। अच्छी रचनाएँ समाज पर प्रभाव डालती है। साहित्य समाज-जीवन तथा सामाजिक मूल्यों की आलोचना करता है। समाज-जीवन के संदर्भ में डॉ.पुरूषोत्तम लिखते है कि,"समाज की महत्वपूर्ण इकाई मानव और उसके जीवन में उतार चढ़ाव की विचित्रता और विषमता के जो दृश्य हमारे सामने उपस्थित होते हैं उसका सम्यक विवेचन साहित्य की विभिन्नता विधाओं में दृष्टिगत होता है।"[1] साहित्यकार समाज जीवन का ही एक अंग है/और वह समाज में जो कुछ देखता है, अनुभव करता है उसे कलात्मक ढंग से कल्पना के आधार पर अपने साहित्य में व्यक्त करता है। साहित्यकार के बारे में शेखर शर्मा का मत है कि, "साहित्यकार जन-जीवन से जो कुछ प्राप्त करता है, उसे मनोविकारों के माध्यम से स्थायी भावों में परिणत कर प्रतिभाशक्ति द्वारा उसी को वह वापिस भी लौटा देता है।"[2]

साहित्य, समाज और साहित्यकार का परस्पर संबंध रहा है। साहित्य और समाज का अटूट रिश्ता रहा है, जिस प्रकार समाज उन्नत होगा, साहित्य भी उसी प्रकार संपन्न विकसित रहेगा। इसके संदर्भ में राजेश शर्मा का मत दृष्टव्य है,"साहित्य वस्तुतः जीवन और समाज से भावी सामग्री लेकर अपने शरीर का स्वरूप का निर्माण करता है। अच्छा साहित्य और अच्छा समाज मानवी जीवन

1.डॉ.पुरूषोत्तम - 'विचार वीथी', पृ.1

2.शेखर शर्मा - साहित्य सिद्धांत और साहित्यरूप, पृ.27

को समृध्द और उन्नत बनाता है।'[3] सच्चा साहित्यकार समाज का अंग होता है। जो देखता है अनुभव करता है उसे वह शब्दबद्ध करता है। सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक एकता में साहित्यकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

साहित्य मानव जीवन की झाँकी होने के साथ-साथ जीवन का पथ दर्शक रहा हैं। समाज जीवन में आनेवाले बदलाव, परिवर्तन, रूकावटें आदि की विस्तृत आलोचना करता हैं। आज विश्वस्तर पर साहित्य की इसी दृष्टी में व्याख्या हो रही है। किसी भी समाज का समग्र अध्ययन करना हो तो तत्कालीन साहित्य को परखना जरूरी है। साहित्य समाज जीवन का बाहरी रूप का ही नहीं बल्कि भीतर का भी हूब-हूब चित्रण है। साहित्य व्यक्ति या समाज की अनुभूतियों, भावनाओं, कल्पनाओं और विचार धाराओं का रूप ही है इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है।साहित्य मानव का हितैषी, कल्याणकारी है। सत्य, शिव, सुंदर की स्थापना में साहित्य सदा परिवर्तनीय रहा है। साहित्य में चेतना, जातिवाद, अधिकार को दर्शानेवाली, संगठन करानेवाली ताकद साहित्य हैं, साहित्यकार उसका एक अंग है। स्पष्ट है आज के युग में ऐसे साहित्य की आवश्यकता है।

साहित्यकार सामाजिक कुरीतियों, दुष्प्रभाव को इस प्रकार चित्रित करते हैं, जिससे समाज-जीवन में जागृति आ जाती है। इसी क्रम से जन-मन संगठित होकर सामाजिक परिवर्तनों की माँग करता है। गिरिराज किशोर एक संवेदनशील रचनाकार होने के कारण उनके नाटक समाज-जीवन में परिवर्तन हेतु महत्त्वपूर्ण योगदान देनेवाले है।

3.1 समाज : अर्थ एवं परिभाषा -

समाज जीवन का अध्ययन करने का साहित्य एक प्रमुख साधन है। समाज को परिभाषित करने का प्रयास कई विद्वानों ने किया हे। जो इसप्रकार है।

1. 'हिंदी विश्वकोश' के अनुसार ''समुह संघ, गिरोह दल, सभा, एक ही स्थान

3.राजेश शर्मा - 125 आधुनिक हिंदी निबंध, पृ.13

पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले लोग जो मिलकर अपना एक अलग समुह बनाते है। समुदाय जैसे-शिक्षित समाज, ब्राहमण समाज वह संस्था जो बहुत से लोगों ने एक साथ मिलकर किसी विशिष्ट उद्‌देश्य की पुर्ति के लिए स्थापित की हो सभा - जैसे संगीत समाज, साहित्य समाज आदि।''[4]

2. रामचंद्र वर्मा ने 'प्रामाणिक हिंदी कोश' में समाज का अर्थ इस प्रकार दिया है - ''समाज पु (सं) (1) समुह गिरोह, (2) एक जगह रहनेवाला अथवा एक ही प्रकार का काम करनेवाले लोगों का दल या समुह, समुदाय। (3) किसी विशेष उद्‌देश्य से स्थापित की हुई सभा।''[5]

3. गोविंद चातक ने 'आधुनिक हिंदी शब्दकोश' में समाज की व्याख्या करते हुए लिखा है - (1) संघ, समष्टि, सभा, परिषद गोष्टी। (2) मानव समुह, जन समुह, मंडली, किसी भूखंड में रहनेवाली जनता, जन-समुच्चय, लोक, जन। (3) प्राचीन भारत में सार्वजनिक सभा, उत्सव, समस्या।''[6]

4. 'नालंदा विशाल शब्दसागर' के अनुसार - ''समाज (संज्ञा पु.) (सं) (1) समुह गिरोह। (2) एक स्थान पर रहनेवाला अथवा एक ही प्रकार का कार्य करनेवाले लोगों का वर्ग, दल या समुह, समुदाय। (3) किसी विशिष्ट उद्‌देश से स्थापित की हुई सभा / सोसायटी।''[7]

समाज का जन प्रचलित अर्थ है - समुह सभा, संस्था, समुदाय।

5. 'मानक हिंदी कोश' में इसका अर्थ है - 1. बहुत से लोगों का गिरोह या झुंड़। समुह जैसे सत्संग समाज।

2. एक जगह रहनेवाले अन्यथा एक ही प्रकार का काम करने वाले लोगों का दल वर्ग या समुह।

---

4. सं.नगेंद्रनाथ बसु - 'हिंदी विश्वकोश', पृ.599-600
5. सं.रामचंद्र वर्मा - 'प्रामाणिक हिंदी शब्दकोश', पृ.1283
6. सं.डॉ.गोविंद चातक - 'आधुनिक हिंदी शब्द कोश', पृ.605
7. सं.श्री नवलजी - 'नालन्दा विशाल शब्दसागर', पृ.1407

3.किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित कि हुई सभा जैसे - आर्य समाज, संगीत समाज।

3) किसी प्रदेश या भुखंड में रहनेवाले लोग, जिनमें सांस्कृतिक एकता होती है।

4) किसी संप्रदाय के लोगों का समुदाय जैसे - अग्रवाल समाज।''[9]

आधुनिक समाज शास्त्रीयों ने समाज शब्द का व्यापक अर्थ - विस्तृत मानवता या मानव जाति तथा मानव समाज के प्रामाणिक आधार पर स्पष्ट किया है।

यहाँ विभिन्न विद्वानों ने समाज के लिए समुह, दल, गिरोह, सभा, झुंड़ आदि शब्दार्थ प्रयुक्त किये हैं । ये अर्थ कुछ सीमित है, लेकिन आज भिन्न जाति, धर्म, संस्कृति रीति-रिवाज, परंपरा के लोग आपसी सहचार्य, विचारों की एकरूपता से सीमाएँ तथा नियमों का निर्वहन करते हुए उसके अनुसार अपना आचरण करते हैं, तो वह भी 'समाज' कहलाता है। अतः व्यक्तियों का समुह केवल समाज नहीं, पर समुह में रहनेवाले व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों को 'समाज' कहते है। समुह, दल, अल्पकालिन सामाजिकता का प्रतीक है, उससे भावनात्मक संदेह नहीं है। इससे व्यापक भावना पर समाज आधारित रहता है।

समाज की परिभाषा -

समाज की परिधि बड़ी विस्तृत एवं विशाल है। समाज की स्थापना के बारे में डॉ.शशिभुषण सिंहल कहते है, 1.''मानव के विकास क्रम में समाज की स्थापना हुई है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, व्यक्ति ने अपनी रति संबंधी एवं पैतृक वृत्तियों के कारण अपना अकेलापन त्यागकर पारिवारिक जीवन अपनाया है। उसके उपरांत उसकी सामाजिक भावना उत्तरोत्तर विकसित होती रही है। अतः समाज सौद्देश्य व्यक्तियों का गतिशील गठन है। समाज अपने सदस्यों को बाहय घातक तत्वोंद्वारा नष्ट होने से बचाता है, रक्षा कर उनके व्यक्तित्व का विकास करता है और कुछ जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा कर उन्हें पाने के लिए प्रयत्नशील होता है।''[8]

यहाँ स्पष्ट है मानव जीवन में नैतिकता आदर्श मूल्यों की स्थापना करने के लिए समाज का होना अनिवार्य है। समाज एक गतिशील प्रक्रिया है जिसकी स्थापना किसी-न-किसी उद्‌देश्य को लेकर हुई है। उसके बल पर सामाजिक स्वास्थ्य सुरक्षित होता है। समाज विघातक तत्वों को हटाकर समाज जीवन स्वस्थ, सुंदर बनता है। मानव की अनिवार्यता समाज की निर्मिति है।

2. डॉ.कुँवरपाल सिंह के अनुसार ''समाज का अस्तित्व हमेशा किसी सामाजिक संरचना के रूप में ही पाया जाता है। उसकी चाहे जो भी विशेषता है, हो पर उसमें सामुदायिक चरित्र निश्चित रूप से मिलता है।''[9] समाज की प्रमुख विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए उसकी परिभाषा एक ऐसे संगठन के रूप में की जा सकती है जो निरंतर विकसित होती रहती है। तथा जिसके प्रमुख क्रिया-कलाप किसी दैवी शक्ति पर नहीं बल्कि उत्पादन प्रणाली के विकास पर आधारित होते है। समाज, समुह की अपनी जातिगत प्रचीति रहती है। प्राचीन काल से बना समाज ईश्वर की देन नहीं बल्कि विशिष्ट रूप से बनी अनिवार्यता है।
3. डॉ.सोफिया मैथ्यु के अनुसार - ''समाज को पारिवारिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टी से परस्पर संबंधित व्यक्तियों का समूह कहा जा सकता है।''[10]
4. डॉ.विमल भास्कर ने कहा है - ''समाज मानवों के संगठन की ऐसी ईकाई है, जिसका खंडन भी कभी संभव नहीं हो सकता। इस समाज का प्रत्येक प्राणी सामाजिक है।''[11]
5. डॉ.राजपाल शर्मा कहते है - ''समाज संबंधों का समुह है। समाज मानव जीवन का अनिवार्य अंग है। समाज से अलग 'मनुष्य' का अस्तित्व नहीं है। समाज मनुष्य को अपनी सीमा रेखाओं में कैद कर रखना चाहता है। किसी प्रदेश के

---

8. डॉ.शशिभूषण सिंहल - 'हिंदी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ', पृ.13
9. डॉ.कुँवरपाल सिंह -'हिंदी उपन्यास में सामाजिक चेतना',पृ.17
10. डॉ.सोफिया मैथ्यु - 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में सामाजिक चेतना',पृ.12
11. डॉ.विमल भास्कर - 'हिंदी में समस्याशास्त्र',पृ.42

निवासियों की ऐसी जटिल व्यवस्था को जिसमें वे व्यवसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक या राजनीतिक संबंधों की दृष्टी से अंतसंबंधित रहते है। उसे समाज कहते है।''[12]

6. सी.पी.भटनागर का मत है,''भावुकता पुर्ण सुखापन और आपसी सहचर्य की दृष्टी ही समाज है।''[13]

7. डॉ.विमल शंकर समाज सामाजिक संबंधों का पार्श्व है' इस परिभाषा को स्पष्ट करते हुए वे कहते है - ''मनुष्य की पारस्पारिक क्रियाएँ, अंतक्रिया एवं प्रतिक्रिया वही समाज का निर्माण एवं विकास करती है, इनके माध्यम से ही समाज की पीढ़ी दुसरी पीढ़ी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती है।''[14]

यहाँ स्पष्ट है कि, समाज केवल व्यक्तियों का समुह नहीं है, बल्कि अपने आस-पास के रहनेवालों के प्रति संबंध का साधारण नाम ही समाज है।

समाज एक सामाजिक संस्था होने के कारण मानव उससे जुड़ा सामाजिक प्राणी है। आज मानवता का आधार समाज है। समाज वह व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति सामुदायिक व्यवहार, परंपरा भाव-अनुभाव दूसरों तक पहुँचाता है। समाज एक विचारधारा, मान्यता होती है। अपनी स्थिति, प्रवृत्ति को दर्शानेवाली व्यवस्था, शाश्वत व्यवस्था समाज है। समाज एक परंपरा, है जो प्राचीन काल से आजतक रही है - उसका प्रवाह अखंड, होने के कारण आदिम काल से आज तक मानवी जीवन, सभ्यता की कहानी समाज व्यवस्था है।

समाज में हर वर्ण,धर्म, कर्म, व्यवस्था, नीति, रीति, रुढ़ि का प्रभाव रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था को वर्णाधिष्ठीत कहा जाता है। कभी कभी धर्मलिखित समाज बने है - मुस्लीम समाज, जैन समाज, हिंदु समाज,परंतु एकता

12. डॉ.राजपाल शर्मा - 'हिंदी वीरकाव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति', पृ.40
13. सी.पी.भटनागर - 'क्रायसिस ऑफ इंडियन सोसायटी', पृ.8
14. डॉ.विमल शंकर - 'हिंदी के आंचलिक उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ', पृ.5

है ऐसे समाज एकता में दरारे बनती है। सामाजिक स्वास्थ एवं एकता के लिए अखंड मानव समाज का होना जरूरी है। साहित्य और साहित्यकार ऐसे समाज की निर्मिति के लिए कार्य करता है। धर्म, वर्गविहीन समाज की आज आवश्यकता है, जब तक यह समाज समताधिष्ठित समाज नहीं बनता तब तक समाजवादी व्यवस्था का होना असंभव है।

समाज मानव की सामुहिकता का प्रभाव है। व्यक्ति उसका एक अंग है। व्यक्ति से समाज विकसित होता है, तथा समाज से व्यक्ति का अस्तित्व सुरक्षित रहता है। अतः कोई भी साहित्यकार समाज से अलग नहीं रह सकता न साहित्य समाज से अछूत रहता है। स्पष्ट है समाज, साहित्य, मानव का परस्पर संबंध है। यह संबंध कल्याणकारी होने से सभी के लिए उपयुक्त ही बना है।

3.2 जीवन : अर्थ एवं परिभाषा -

साहित्य और जीव जगत का संबंध है। हर एक संकल्पना को स्पष्ट करने का कार्य साहित्य के द्‌वारा किया जाता है। जीव,जगत एक अनोखी संकल्पना है। जीव-ब्रहम, माया, संसार जैसी संकल्पनाएँ दर्शनशास्त्र के साथ समाजशास्त्र से जुड़ी है। जीव, आत्मा, प्राण, परमात्मा का अर्थ धर्मशास्त्र से जुड़ी है। अतः स्पष्ट है जीव से जीवन बना शब्द धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिकता से संबंधित हैं। जीवन सामाजिक धार्मिक संकल्पना बनी, परिणामतः लोगों ने अपनी-अपनी दृष्टि से उसे परिभाषित करने का प्रयास किया हैं।

'जीवन' शब्द को परिभाषित करना अत्यंत कठिन काम है। लेकिन मानव स्वभाव ऐसा है कि असंभव को संभव बनाने के प्रयास में ही निरंतर जुड़ा रहता है। जीवन शब्द का अर्थ है - ''जीवित रहने का भाव। जन्म से मृत्युतक का समय। जिंदगी। प्राणाधार।''[15] अन्य शब्द कोशों में भी जीवन का अर्थ - जीवित रहना या जन्म से मृत्यु तक का समय बताया गया है। 'उपनिषद' में जीवन को 'सोम-योग' कहा गया है। छंदोग्य के तृतीय प्रपाठक के 17 वे खंड में - ''मनुष्य जीवन को यज्ञमय कहा गया है।''[16] जीवन मानों एक यज्ञ है जिसमें मानव को

---

15. सं.नवलजी - 'नालंदा विशाल शब्दसागर',पृ.439
16. सन्यवृत विदयालंकार -'एकादशोपनिषत', पृ.262

विविध बातों की आहुतियाँ देनी पड़ती हैं। इसमें मानव का त्यागपूर्ण जीवन ही मानव-जीवन है यह स्पष्ट किया है। अंग्रेजी शब्द कोशों में भी जीवन को ''सजीव सृष्टि' और 'जीवन चरित्र' आदि अर्थ दिए हैं।''[17]

विभिन्न विद्वानों-आलोचको ने जीवन की परिभाषा करने का प्रयास किया है, जो इस प्रकार है -

1. टॉलस्टाय ने जीवन की परिभाषा करते हुए कहा है - ''हम जीवन को न दुःख पुर्ण कह पाते है और सुख पुर्ण। इस प्रकार हास-रूदन मिश्रित जीवन स्वयं अपनी ही परिभाषा बनकर रह जाता है।''[18]

अर्थात सुख-दुखभरे जीवन को ही वास्तव में 'जीवन' कहा जाता है। मनुष्य भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। इसी प्रयास को हम जीवन कहते है। जीवन रुपी वस्त्र विविध तानों-बानों से बुना जाता है।

सुख-दुःख एक भावात्मक मनोधारणा है। सुख-दुःख को सही अर्थों में परिभाषित करना कठिन कार्य है। मानवी मन, जीवन से जुड़ी यह भावधारा है। आनंद देनेवाली प्रवृत्ति-धारना सुख है, अपने सुख के साथ दूसरों को सुख देना, दूसरों का दुःख अपना मान लेनाही श्रेष्ठ जीवन है। जो दूसरों के लिए जीता है वही पुरूषोत्तम बनता है वही हमारी संस्कृति है। साहित्य का यही संदेश है।

2.राहुल सांस्कृत्यायन ने गौतम बुद्‌ध के माध्यम से कहा है - ''जीवन नदी का प्रवाह है, जो हर क्षण नया होता है यदि नया होने की गुंजाईश न होती तो हमारे सारे सुविचार, सुकर्म, सुवचन, निष्फल होते। मैं जीवन को सदा नया मानता हूँ।''[19]

अर्थात जीवन का निरंतर गतिशील रहना एवं परिवर्तनशील होना ही वास्तव में जीवन माना गया है। अतः जीवन का संपुर्ण संबंध साहित्य से जुड़ा है।

---

17. S.R.Prabhudesai - 'Standard Dictionary',पृ.305

18. John & Lio- 'Interrnational Dictionary of thought' पृ.43

19. राहुल सांस्कृत्यायन - 'सिंह सेनापति', पृ.227

जीवन व्यक्ति, जीव, जन्तु, प्राणी, ज्ञात, अज्ञात वस्तुओं का भी होता हैं।

उपर्युक्त कथन में जीवन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सभी परिभाषाएँ जीवन को पुरी तरह शब्दों में बाँध नहीं सकती। जिस प्रकार सृष्टि का निर्माण रहस्यमय है उसी प्रकार मानव जीवन भी 'रहस्यमय'ही हैं। मनुष्य का जीवन बुद्धि और हृदय के तथा शरीर और मन के संगम से क्रियान्वित रहता है। हृदय, बुद्धि तथा कल्पना के आधार पर मानव जीवन संबंधी धारणाएँ मन में निर्माण होती है। किसी सजीव को समझ लेना ही जीवन है। अतः व्यक्ति या व्यक्तियों का समुह समाज को समझना ही उनके संपुर्ण जीवन का अध्ययन है।

जीवन एक व्यवस्था है, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक मान्यताओं की स्वीकृत करनेवाली पद्धति है। जीवन में मूल तत्व जीव है। जीव का संबंध जान, अस्तित्व, सजीव से है। जिसमें सजीवता, अस्तित्व की पहचान, चेतना का निर्माण जैसी विशेषताएँ रही हैं। जो जीया जाय वह 'जीवन' है, अतः आधुनिक युग में 'जीओ और जीने दो' यह महामंत्र बना है। सुख-दुख से बना मानव जीवन समाज के लिए होगा, तब सर्वात्मकता, सार्थक बनेगा। जो अपने लिए जीता है उसे मृत कहा जाता है, दुसरों के लिए जीनेवाला सहायक, आदर्श चरित्र का जीवन बनता है। साहित्य ऐसे व्यक्ति की कहानी जीवनी गाथा ही है। जीवन को शब्दबद्ध करता साहित्य सृजन है - यही महान कार्य साहित्यकार करता है।

3.3 साहित्य और समाज-जीवन -

साहित्य में प्रत्यक्ष जीवन और समाज के साथ मानव जीवन के सामंजस्य का चित्रण किया जाता है। सुनियोजित शब्दों से बने ग्रंथ ही सामाजिक चेतना से जुड़ जाते है। साहित्य द्वारा आदमी के विचारों में परिवर्तन आ सकता है। अच्छी रचनाएँ समाज-जीवन पर लगातार प्रभाव छोडती है। साहित्य समाज-जीवन तथा सामाजिक मुल्यों की आलोचना करता है। समाज की भाँति साहित्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहता है। अतः साहित्य का निर्माण देश और समाज के अनुरूप होता है। इनमें साहित्यकार युग दृष्टा और सृष्टा के रूप में महत्त्वपूर्ण

कार्य करता है। देश-विदेश के महापुरूषों द्वारा मानव मुल्यों की प्रतिष्ठा का दिया गया संदेश आज भी साहित्य द्वारा समाज को प्रेरणा देता है।

साहित्य और समाज के संबंध को बताते हुए प्रसिद्ध विद्वान एच्.डी.डंकन लिखते है, ''साहित्य को एक स्वयंभू संस्था के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करते है जो धर्म दर्शन, राजनीतिक आदि की तरह समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किसी भी साहित्यिक कृति के विश्लेषण के समाजशास्त्रीय आधार हेतु वह लेखक, पाठक, आलोचक के मध्य होनेवाली अंतःक्रियाओं प्रतिमानों के आदर्श प्रतिरूपों की श्रृंखला के अध्ययन पर बल देते है।''[20]

अतः साहित्य के निर्माण में लेखक, पाठक आलोचक इन तीनों के संबंधों का महत्त्वपुर्ण योगदान है। ये तीनों एक दूसरे के लिए कार्य करते है। समाज की सरल एवं जटिल प्रवृत्ति इनके अंतसंबंधों को प्रभावित करती है। अतः समाज-जीवन के अध्ययन के लिए साहित्य कृति एक महत्त्वपूर्ण आधार है। साहित्य और समाज-जीवन का संबंध अटूट है। साहित्य द्वारा कर्तव्यबोध के साथ-साथ जीवन को उच्च आदर्शो की ओर ले जाने के संकेत मिलते है। साहित्य धर्मशास्त्र या नीतिशास्त्र नहीं है। किंतु समाज और जीवन के साथ साहित्य का घनिष्ठ संबंध है। इसलिए समाज और जीवन की भलाई-बुराई का विचार साहित्य में किया जाता है। साहित्य की दृष्टी जीवन के अंतर्गत और बहिर्गत दोनों को प्रभावित करती है। अतः साहित्य और जीवन का संबंध अविभाज्य है। साहित्य जीवन की अनन्य स्थितियों का चित्रण करता है। परिवार, विवाह, स्त्री-पुरूष संबंध, जाति व्यवस्था, राष्ट्रीयता, धर्म, रूढी-परंपरा आदि अनेक मूल्यों और स्थितियों को साहित्य आकार देता है। साहित्य का उद्देश्य जीवन की विविधता में एकता स्थापितकर मूल्यों की रक्षा करना है।

साहित्य और समाज जीवन एक-दूसरे से पुरक है। जहाँ एक ओर साहित्य में सामाजिक भावों और विचारों की प्रतिछाया परिलक्षित होती है। वहाँ समाज भी साहित्य द्वारा प्रसारित भावों से स्पष्टतः प्रभावित होता है। वस्तुतः

20. व्ही.डी.गुप्ता - साहित्य का समाजशास्त्र,पृ.3

साहित्य समाज का मात्र प्रतिबिंब ही नहीं अपितु नियामक और उन्नायक भी है। समाज से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा नाटक में सामाजिकता अधिक रहती है। मानव जीवन के व्यापक संदर्भों और यथार्थ जीवन के विविध आयामों से विषय चुनकर वह समाज के लिए ही अपने रूप का निर्माण करता है।

साहित्य मानव समाज के सांस्कृतिक जीवन का अंग है। साहित्य का रूप सांस्कृतिक है। ज्ञान, क्रिया इच्छा का मिलाफ साहित्य है। साहित्य और समाज दोनों मानव संस्कृति के पर्याय बन जाते है। डॉ.सुषमा शर्मा के शब्दों में 'समाज चलनों एवं कार्यविधियों, प्रमुख एवं पारंस्पारिक सहयोग अनेक समूहों एवं श्रेणियों की मानव व्यवहार के निर्देशन की व्यवस्था है।''[21] यहाँ स्पष्ट है साहित्य की निर्मिति समाज जीवन से होती है। समाज में मनुष्य की भावाभिव्यक्ति परिष्कृत होकर साहित्य बनता है। साहित्य की निर्मिति पशु नही बल्कि मानव करता है। अर्थात मानव और साहित्य का संबंध है। साहित्य और समाज-जीवन के बारे में डॉ.विमल सहस्त्रबुद्धे का मत है,''मानव की सामाजिक अनुभूति समाज के परिवर्तन के साथ बदलती है। प्रत्येक युग, काल की समाज विधि निषेध बदलता है जिसका प्रभाव समाज पर होता है। सामाजिक परिवर्तन से प्रभावित साहित्य समाज को दिशा निर्देशित करता है। मानवी मन को संस्कारित करने की व्यवस्था साहित्य है।''[22] भारतीय साहित्य समाज, धर्म, दर्शन, इतिहास को समेटता हुआ विकसित, परिवर्तीत होता है।

भारतीय साहित्य की मूलभाव सर्वात्म विकास ही है। 'बहुजन हिताय' को आधार बनाकर साहित्य लिखा जाता है। जीवन का बहुआयामी चित्रण करके सामाजिक समस्याओं को उजागर करनेवाला साहित्य कालजयी, सर्वव्यापी, सर्वमान्य बनता है। एक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार अपनी वैयक्तिक अनुभूति को स्पष्ट करते हुए अतीत, वर्तमान और भविष्य को समेटता हुआ समाज जीवन पर

21. सुषमा शर्मा - 'उपन्यास और राजनीति', पृ.20
22. डॉ.विमल सहस्त्रबुद्धे - हिंदी उपन्यासों में नारी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पृ.199

प्रकाश डालता है। इसीकारण उन्हें ''भविष्य द्रष्टा कहा जाता है। वह अपनी जातिगत विशेषताओं को रूपायतित करता है। भावों को चित्रित करके चित्रकार काल्पनिक जगत में जी सकते है मगर उपन्यासकार, कहानीकार के पैर धरती पर होते है।''[23] नाटककार के लिए भी यह कथन यथार्थ लगता है।

यहाँ स्पष्ट है साहित्य और समाज एक सिक्के के दो अंग है। समाज का अध्ययन करना हो तो साहित्य चाहिए और साहित्य का अध्ययन करने के लिए समाज जीवन को जाँचना अनिवार्य है। हम कह सकते है दोनों परस्परावलंबी है - परस्परपूरक सहायक है।

3.4 पारिवारिक जीवन -

परिवार सर्वकालिक, सार्वत्रिक एवं आवश्यक संस्था है। व्यक्ति और समाज के लिए मौलिक कार्य करनेवाली परिवार संस्था मानव की मुलभूत बातों की पुर्ति कराती है। परिवार समाज का मूल आधार होने के कारण इससे समाज की निरंतरता, विस्तार एवं संस्कृति की रक्षा होती है। संतती का प्रयोजन, उनकी रक्षा, सामाजिकीकरण, वैध यौन संबंध आदि परिवार की विशेषता है। सांस्कृतिकता, सामाजिकता, औद्योगिकरण के निर्माण एवं विकास में परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। परिवार के दूवारा यौन इच्छाओं की पूर्ति, संतानोत्पत्ति अन्य - मकान, शिक्षा, प्रेम, संतान की रक्षा संस्कार, आत्मीय संबंध आदि लक्ष होते है। वंश, सत्ता, विवाह, निवास के आधार पर परिवार के विभक्त परिवार, मातृवंशीक परिवार, संयुक्त परिवार आदि कई भेद है।

आज परिवार का ढांचा पारंपारिक नहीं है। नयी अर्थव्यवस्था, औदयोगिकरण, भौतिकवादी प्रवृत्ति, शिक्षा प्रसार, रोजगार की प्राप्ति, राजनीतिक चेतना आदि के कारण संयुक्त परिवार की नींव हिल रही है। डॉ.महाजन लिखते है, ''बदलती स्थितियों के इस परिप्रेक्ष्य में बाप-बेटे, पतिपत्नी, प्रेमी-प्रेमिका आदि सब मिलकर परिवार, परिवेश के संबंधों के नाम भले ही वही रहे है, लेकिन उनके

---

23. प्रेमचंद - हंस पत्रिका - 1932 अप्रैल, पृ.40

भीतर वही न रह गया जो रूढ़ अर्थो में हुआ करता था।"[24] यशपालजी ने "आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, वैचारिक कारणों से विघटन होता है ऐसा माना है।"[25] डॉ.एल्.एन.मजूमदार लिखते है - विघटन के पीछे "राजनीतिक आंदोलन, नयी दृष्टि, आर्थिक व्यवस्था आदि कारण माने है।"[26] आज परिवार का कार्य सीमित हो रहा है। भारतीय समाज में परिवार विहिन समाज की कल्पना नहीं हो सकती। अपनी विशिष्ट कार्यो के कारण परिवार अपनी प्राथमिकता बनाये रखने में सफल रहता है। अपनी सार्वभौतिक, सार्वमौलिकता के कारण परिवार संस्था नष्ट नहीं होती तथा नष्ट नहीं होनी चाहिए।

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के विकास के लिए परिवार की आवश्यकता है। परंपरागत पारिवारिक जीवन में स्त्री पूर्णतः पुरूष की आश्रित समझी जाती है। स्त्री को विषम परिवेश का शिकार बनाकर उसकी प्रगति और स्वतंत्रता पर पाबंदी लगायी गयी है। पारिवारिक झूठी प्रतिष्ठा, धार्मिक दंभपर, रूढ़ि-प्रथा के नाम पर उसका शोषण होता है। संयुक्त परिवार में कार्यों का बोझ नारी को उठाना पड़ता है। लगता है भारतीय समाज में नारी को शोषित, उपेक्षित रखा है।

समाज में स्थित अनेक संस्थाओं में से परिवार संस्था एक है। परिवार में मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने के प्रयत्न किये जाते है। जिससे समाज की उन्नति होती है। अतः मनुष्य में प्रेम,सद्भावना, रिश्तेदारी, धार्मिकता आदि भावनाएँ निर्माण कर उसे समाज प्रिय बनाया जाता है। परिवार एक सामाजिक ढाँचे की प्रमुख्य इकाई है। यह मानव जाति के जीवन रक्षण, वंशवर्धन, तथा जातीय जीवन की निरंतरता को बचाए रखने का प्रधान साधन है। व्यक्ति का संपूर्ण जीवन परिवार में रहकर नियमबद्ध रूप में कार्यरत रहता है। इसलिए समाज में परिवार

---

24. डॉ.एस.बी.महाजन - 'आधुनिक हिंदी कहानी - साहित्य में काममुलक संवेदना', पृ.117
25. डॉ.चयनलाल गुप्ता - 'यशपाल के उपन्यास सामाजिक कथ्य', पृ.43
26. डॉ.एल.मजूमदार - 'भारतीय जन संस्कृति', पृ.112

मौलिक है। लेकिन प्राचीन काल में जो संयुक्त परिवार थे वह आज विघटित परिवार के रूप में दिखाई देते हैं। इसका कारण बताते हुए डॉ.मंजुला गुप्ता ने लिखा है,"आधुनिक युग में व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना ने परंपरागत पारिवारिक संस्था को विघटित किया है। परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी संस्था है, भारतीय समाज में परिवार संघटन का अनिवार्य अस्तित्व रहा है। समष्टि से व्यष्टि की ओर बढ़नेवाले व्यक्ति ने संयुक्त परिवार की अपेक्षा लघु परिवार को अधिक महत्त्व दिया। वर्तमान अर्थव्यवस्था ने भी इस संस्था को एक नया आयाम दिया है।"[27]

संसार के हर कोने में स्थित समाज में अपनी-अपनी जाति के अनुसार बना परिवार दिखाई देता है। भारतीय संस्कृति में तो परिवार को अनन्य साधारण महत्त्व दिया गया है। भारतीय संस्कृति में परिवार के इसी विशाल दृष्टिकोन को चरितार्थ करते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना को महत्त्व दिया है।

गिरिराज के 'नरमेध' इस मनोवैज्ञानिक नाटक में परिवार के बिखराव का चित्रण हुआ है। तारा अपने कारण अपनेही परिवार का वातावरण घुटन भरा बनाती है। इस नाटक के सभी पात्र पारिवारिक जीवन की कश्मकस से गुजरते नजर आते है। अंकन अपने परिवार के बारे में बताता है कि, "मुझे लगता है घर की हवा में बारूद ही बारूद घुलता जा रहा है कब फटता है, अब तो इसी का इंतजार है। बड़े भैया और वंती जीजी का विवाह हमारे घर में चिंगारी की तरह सुलग रहा है। कभी छोटे भैया सुलगते हैं कभी माँ। पापा तो पत्थर हो गए है। मुझे लगता है अन्दर-ही-अन्दर ज्वालामुखी पक रहा है। धमाका होने में ज्यादा देर नहीं।"[28]

इस नाटक के पात्र न चाहते हुए भी परिवार को बनाए रखने को पारिवारिक घुटनभरी जिंदगी जी रहे है। इनके विचारों में भिन्नता होने पर भी एक दूसरे के दिल को टूटने से बचाने की कोशिश में लगे है। 'नरमेध' नाटक के सभी

27. डॉ.मंजुला गुप्ता - 'हिंदी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वंद्व', पृ.11

28. गिरिराज किशोर - 'नरमेध', पृ.46

पात्रों की आरंभ से अंत तक मानसिक कुंठा चित्रित हुई है। साथ ही पारिवारिक घुटन और टुटन का भी चित्रण हुआ है। इसमें जीवन की उलझनों और पारिवारिक कुंठाओं का चित्रण हुआ है।

'प्रजा ही रहने दो' इस नाटक में गृह-कलह को दर्शाया है। एक ही परिवार के लोगों में सत्ता के लिए किया एक-दूसरे का वध इस नाटक की मुख्य कथा है। इसमें परिवार के सभी सदस्यों में प्यार से ज्यादा अधिकार, सत्ता को महत्त्व दिया है। मगर इस नाटक में कर्ण ही ऐसा चित्रित हुआ है जिसे सत्ता, अधिकार से ज्यादा अपना लालन-पालन करनेवाले माता-पिता का परिवार ही अच्छा लगता है। वह कहता है कि, "माता-पिता का माता-पिता होना मात्र जन्म देने से ही सिद्ध नहीं होता। सारथि मेरे पिता हैं, उनकी पत्नी मेरी माँ हैं जिन्होंने मुझे यह जीवन दिया है। उन्हें छोड़कर कुरूवंशियों की पाँत में बैठना मुझे स्वीकार्य नहीं।"[29]

कर्ण अपने परिवार के लिए इतने बड़े कुरूवंश को ठुकराता है। उसे कुरूवंश से ज्यादा अपना परिवार महत्त्वपूर्ण लगता है।

सन्1980 ई.में प्रकाशित 'घास और घोड़ा' यह एक सामाजिक नाटक है। इस नाटक में परिवार की आर्थिक स्थिति के साथ रीति-रिवाज निभाने और रिश्ते-नाते जोड़ने का चित्रण किया है। परिवार रिश्ते जोड़ने से बनता है। इस नाटक में प.ख्यालीराम और प.हजारीलाल एक दूसरे के बेटा बेटी का रिश्ता जोड़ते है। इस नाटक की मुख्य नारी पात्र विमला यौन संबंधों से पीडित है जो प्रधान के बेटे से प्यार करती है और अपने परिवार का विनाश कर लेती है। विमला का पति प्रधान के बेटे को समझाने की बात करता है वह कहता है कि - कहां है वह? बुलाओ.... मैं उससे साफ-साफ बात करूंगा। वह मेरा घर क्यों बरबाद करना चाहता है?"[30] विमला के पति को अपने परिवार की चिंता है पर विमला को नहीं। परिवार के संबंध पति-पत्नी के प्यार और विश्वास से सुखी बनते है। पर

---

29. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.112

30.गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.67

विमला अपने पति से प्यार और विश्वास नहीं रखती इसी कारण उसका परिवार टूट जाता है। बिखर जाता है। बिखरते परिवार का चित्रण इस नाटक में हुआ है।

'केवल मेरा नाम लो' इस मनोवैज्ञानिक नाटक में रागिनी की मौत से रजनीकांत का परिवार टूट जाता है। रागिनी की मौत से परिवार के सुलभा और रजनीकांत के दिलो दिमागपर कितना बुरा असर पड़ता है। इसका चित्रण इस नाटक में किया है। माँ की तसवीर के सामने सुलभा कहती है,''माँ, तुम्हें गए आज साढ़े तीन महीने हो गए। उस मकान को छोड़ते हुए सोचा था कि शायद पापा उस घर, आस-पड़ोस और वातावरण को छोड़ देने पर कुछ सँभलेंगे। वहाँ तो आपकी स्मृति ही स्मृति थी। पापा उसी में डूबे रहते थे। यहाँ आकर तो पापा और भी अधिक परेशान रहने लगे.... उनकी आँखों में एक अजीब तरह का डरावनापन उतर आया।''[31]

'जुर्म आयद' इस गिरिराज किशोर के सामाजिक नाटक में उम्मेदि के परिवार और पति के बारे में देखे सभी सपने टूटकर चुर-चुर हो जाते हैं। ''उम्मेदी देवी बहुत से सपनों के साथ दुल्हन बनकर पति के घर आयी थी। कुछ ही दिनों में उसका निषेध-मुक्त और स्वतंत्र व्यवहार ससुराल वालों की आँखों में खटकने लगा। वह बदचलन करार दे दी गयी।''[32] उम्मेदी की इच्छाएँ, सपने उसके ही परिवार वाले तोड़ देते है। इस कारण वह अपने परिवार वालों से रिश्ता तोड़कर आत्महत्या करने जाती है। इस नाटक में उम्मेदी पर उसके परिवारवालों के जुल्म, अत्याचार, अन्याय का चित्रण हुआ है।

3.4.1 दांपत्य जीवन -

वर्तमान युग में सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप मानवीय संबंधों में भी विघटन की स्थिति निर्माण हो गई है। पति-पत्नी के स्थापित मूल्यों में भी विघटन दिखाई देता है। तनाव, वैचारिक भिन्नता, संदेश, अनमेल विवाह,

31. गिरिराज किशोर - 'केवल मेरा नाम लो', पृ.250
32. गिरिराज किशोर - जुर्म आयद,पृ.21-22

अवैध संबंध, व्यसनाधीनता आदि के कारण दांपत्य संबंधों में दरारे उत्पन्न होती है। अतः आज के युग में पति-पत्नी के संबंध में कही भी पहले जैसा स्थायित्व नहीं रहा। असफल दांपत्य जीवन को स्पष्ट करते हुए आशा बागडी लिखती है - ''आधुनिक कालखंड में दाम्पत्य सुखी और प्रदायक नहीं है। उसके अनेक कारण भी हो सकते है। जीवन के आधुनिकीकरण से पति-पत्नी के संबंध में बिगाड उत्पन्न होना स्वाभाविक है।''[33]

भारतीय समाज व्यवस्था का आधार परिवार है तो परिवार का संबंध विवाह संस्था दांपत्य जीवन से है। विवाह सिर्फ तन का संबंध नहीं बल्कि मन का भी संबंध है। दांपत्य सूत्र में मनोमिलन का होना जरूरी है। घृणा, द्वेष, शक के कारण दांपत्य सूत्र टूटता है। प्रेम, आत्मा, सेवा से वह मजबूत होता है। साहित्य में इसी सूत्र को बल दिया है।

आज के युग में परिवार की नीव हिल रही है परिवार में आपसी संबंध टूट रहे है। पति-पत्नी का दांपत्य भाव न रहना समाज स्वरूप के लिए खतरा बना है। भारतीय समाज को मजबूत बनाने के लिए दांपत्य-सूत्र को बदलना अनिवार्य है।

गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में दांपत्य जीवन पर प्रकाश डाला है।

गिरिराज किशोर के 'नरमेध' इस नाटक में तारा की बिगड़ी मानसिकता के कारण पति-पत्नी में तनाव निर्माण होता है। तारा अपने पति पर आरोप लगाती है कि - ''शादी के दिन से ही ये नाराज है। इन्होंने मुझे कभी कुछ नहीं बताया। मैंने इनसे कभी कुछ नहीं छिपाया। वंदु और वंती की शादी इन्होंने नहीं होने दी। फैंसले की आग में मुझे धकेल दिया। नीरा, तु इन्हें समझा, इतना जुल्म न करें। मेरी गलती हो तो मुझे मारें, पर खामोश न रहें। या दुसरी शादी कर ले।''[34]

33.आशा बागडी - 'प्रेमचंद - परवर्ती उपन्यास साहित्य में पारिवारिक जीवन',पृ.317

34.गिरिराज किशार - 'नरमेध', पृ.53

तारा अपने अहम के कारण इंद्रराव पर आरोप लगाकर अपने ही दांपत्य जीवन में जहर घोल लेती है। तारा के मन में शक है कि इंद्रराव किसी और से प्यार करते है। तब इंद्रराव कहते है, ''क्या ये सब बाते तुम मेरे लिए कह रही हो, तारा? एक बार उस देवी के दर्शन करा दो जिसे मैं बिना देखे ही प्रेम किए जा रहा है।''[35] इससे स्पष्ट है कि इंद्रराव सिर्फ तारा को चाहते है, फिर भी तारा अपने पति को संदेह की नजर से देखती है। यहाँ स्पष्ट है पति-पत्नी के बीच संदेह की स्थिति बनती है तब परिवार खंडित होता है एक दूसरे पर भरोसा आदर्श परिवार की नींव है। परंतु वही नींव कहीं उखड़ गयी है। नाटककार ने परिवार पर बल देकर शक से उत्पन्न पीड़ा को बताया है।

गिरिराज किशोर के 'प्रजा ही रहने दो' नाटक में द्रौपदी का अपने पाँच पतियों के प्रति क्षोभ दिखाया गया है। द्रौपदी कुंती से कहती है, ''एक ही पति होता तो स्थितियाँ इतनी न उलझती। पाँच-पाँच पतियों दूवारा रक्षित पत्नी को अन्ततः अपनी रक्षा स्वंय ही करनी पड़ती है। अपनी नियति को तो मैं उसी समय ताड़ गई थी जब वरमाला एक को पहनाई थी और आपने रोटी के टुकडे की भाँति मुझे पाँचों में बाँट दिया था।''[36] द्रौपदी अपने पाँच पतियों के होते हुए अपमानित होती है तब वह अपने पाँच पति होने पर दुःख व्यक्त करती है। उसके दिल का दर्द यहाँ स्पष्ट होता है। वह खुद को रोटी का टूकडा समझती है। जब पति पत्नी की रक्षा नहीं करता तब महाभारत हो जाता है। नारी की इज्जत समाप्त होती है।

इस नाटक में धृतराष्ट्र और गांधारी के विचारों में भी भिन्नता नजर आती है। धृतराष्ट्र युद्ध रोकने के लिए गांधारी से कहते है, ''गांधारी, तुमने मेरी उचित-अनुचित बहुत-सी बातों को अनदेखा किया है .... क्या इन सब बातों को अनदेखा करके इस खेल को अब नहीं रोक सकती। गांधारी, इसे रोक दो।''[37] इसपर गांधारी को लगता है,''एक बार लिया निर्णय निर्णय होता है। उसे रोकना

35. गिरिराज किशार - 'नरमेध', पृ.53
36. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.55
37. वही, पृ.78-79

नहीं चाहिए। ऐसा कहकर वह हँसती है। तब धृतराष्ट्र कहते है कि - हँसो नहीं। मैं तुम्हारी इस हँसी को पहचानता हूँ। जब तुमने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी थी उस समय भी तुम इसी तरह हँसी थी। मैं तुम्हें कभी उस भाँति नहीं देख पाया, पर मुझसे अधिक तुम्हारे उत्तार-चढाव को और कौन जानता है?''[38] यहाँ धृतराष्ट्र और गांधारी का एक दूसरे पर किया व्यंग्य स्पष्ट होता है। पति-पत्नी होकर भी एक दूसरे को समझने, सहाय्यता करने के बजाए वे एक दूसरे पर व्यंग्यपूर्ण आरोप लगाते चित्रित हुए हैं।

गिरिराज किशोर का सामाजिक नाटक 'घास और घोड़ा' में विमला पति के होते हुए प्रधान के बेटे के साथ अनैतिक संबंध रखती है। विमला का पति रामनिरख को प्रधान के बेटे का घर आना विमला से मिलना पसंद नहीं। इसलिए विमला प्रधान के बेटे से कहती है,''तुम जाओं। यहाँ से चले जाओ मेरे घर को बरबाद न करो। तुम मत आया करो।''[39]

इस बात पर गुस्सा होकर प्रधान का बेटा विमला के पति की हत्या कर देता है। उसके कारण विमला का दांपत्य जीवन नष्ट हो जाता है।

इस नाटक में जज और उनकी पत्नी में भी होनेवाले झगड़ों का चित्रण हुआ है। जज की बेटी पिता से फाँसी देने के लिए जिद्द करती है। तब उसे झूठी फाँसी देने का वादा जज करते है ये सुनकर उनकी पत्नी कहती है, ''तुम जज होगे तो कचहरी में ,यहाँ जजी चलाई तो मेरे से बुरा कोई नहीं होगा। तुम बाप होकर लड़की को फाँसी दोगे ! कैसा कलयुग आ गया! ......देखो जी, आज से कभी भी ऐसी बात कही तो मैं आग लगाकर मर जाऊँगी।''[40]

यहाँ जज की पत्नी अपने पति को मरने की धमकी देती है। पत्नी की पति के पेशे से नफरत यहाँ नजर आती है।

---

38. वही, पृ.79

39. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.66

40. वही,पृ.102

गिरिराज किशोर का मनोवैज्ञानिक नाटक 'केवल मेरा नाम लो' के रजनीकांत को पत्नी के गुजर जाने के बाद भी उसकी याद सताती है। वह कहता है "रागिनी की मौत ने मुझे अस्तित्व हीन बना दिया है। माँ के मरने के बाद भी ऐसा ही लगा था पर रागिनी ने मुझे मेरा व्यक्तित्व वापिस लौटा कर दिया था।"[41] रजनीकांत का अपनी पत्नी के प्रति प्यार का चित्रण हुआ है। रागिनी की मौत उसे अस्तित्वहीन बना देती है। रजनीकांत पत्नी के बिना अकेला अंदर ही अंदर घुट-घुट के जीता है। रंजनी का सुखी दांपत्य जीवन रागिनी के मौत के कारण नष्ट हो जाता है।

'जुर्म आयद' नाटक में गिरिराज किशोर ने उम्मेदी के जीवन की करूण कहानी को व्यक्त किया है। "उम्मेदी बहुत से सपनों के साथ दुल्हन बनकर पति के घर आयी थी। वह बदचलन करार दे दी गयी। बेटी हुई। उसने सोचा, शायद हालात संभले। लेकिन हुआ उल्टा। पति ने बच्ची का बाप होने की सच्चाई तक को नकार दिया। तो वह अपना संतुलन खो बैठी।"[42] और इस कारण उम्मेदी के दांपत्य जीवन में दरारे पैदा होती है। उम्मेदी का दांपत्य जीवन बिखर जाता है।

वास्तव में आधुनिक दांपत्य-जीवन की स्थिति सोचनीय है। गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में टूटते हुए पारिवारिक एवं दांपत्य जीवन संबंधों की ट्रेजेडी का सुक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है। पति-पत्नी का आपसी मनोमिलन परिवार की नींव बना है।

गिरिराज किशोर ने दांपत्य जीवन का बहुआयामी चित्रण करते हुए 'नरमेध' की तारा, 'प्रजाही रहने दो' की द्रौपदी, 'घास और घोड़ा' की विमला, 'जुर्म आयद' की उम्मेदी, आशा आदि नारियों की जीवन कहानी चित्रित की है। आज के आधुनिक युग में बदलती मानसिकता, भौतिकता के कारण पारिवारिक संबंध बदल रहे हैं। प्राचीन मान्यताएँ तथा मूल्यों में होनेवाला परिवर्तन इसके मुल है। जब तक नारी सबल, आत्मनिर्भर नहीं होती तब तक नारी का शोषण होता

---

41. गिरिराज किशोर - 'केवल मेरा नाम लो',पृ.273
42. गिरिराज किशोर - जुर्म आयद, पृ.22

रहेगा।आलोच्य नाटकों में सिर्फ नारी का ही होनेवाला शोषण इसी बात का प्रमाण है। दांपत्य जीवन का चित्रण यथार्थ, वास्तविक एवं चिंतनीय बना है।

3.4.2 माता-पिता और संतान -

माता-पिता और संतान परिवार की नींव है। उनके आपसी प्रेम भाव से स्वास्थ बना रहता है। माता-जननी जन्म देनेवाली, पिता - जनक, रक्षक है। दोनों के प्रेम की निशानी संतान है। विवाह वह पवित्र संस्कार है जिसमें संतानोत्पति संतान के प्रति माता-पिता की जिम्मेदारी तथा माता-पिता के प्रति संतानों का धर्म आदि को स्पष्ट किया जाता है। माता जननी होकर भी भविष्य सजानेवाली, पहली शिक्षा देनेवाली, संस्कार करनेवाली, अध्यापिका है, तो पिताजी सहाय्यता करनेवाले है। माता-पिता अपनी जिम्मेदारी निभाते है तब बच्चों का भी यह धर्म बनता है कि अपनी माता-पिता की सेवा करें। यहाँ स्पष्ट है कि माता-पिता संतान का परस्पर मिलाप आदर्श परिवार का प्रमाण है।

आज के औदयोगिकरण, नागरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति का प्रभाव, नई मान्यता-विचारधारा के कारण समाज तथा परिवार को ठेंस पहुँची है। खंडित परिवार, संस्कारहीन संतान, चिंता का विषय है। समाज में फैली अनैतिक मान्यता, विचारमूल्य, संघर्ष की घिनौनी नीति के मुल में आदर्श का अभाव ही रहा है। ऐसी हालत में साहित्यकारों ने अपना धर्म निभाते हुए आदर्श संस्कार की स्थापना के लिए सत्साहित्य का सृजन करने का प्रयास किया है। परंतु कितनी सफलता पाई यह अलग विषय बनता है।

माता-पिता के मन में संतान के प्रति मोह का होना स्वाभाविक है। अपनी संतान की उन्नति एवं सुख की चिंता उन्हें व्यथित करती है। संतान मोह के कारण बडे-बडे लोग भी प्रसंगानुकुल तत्व, आदर्श, नीति को भी तिलांजलि देते है। माता-पिता अपनी संतान की भलाई के लिए कार्य करते हैं। गिरिराज किशोर के नाटकों में भी इन सभी स्थितियों का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है।

गिरिराज किशोर के 'नरमेध' नाटक में इंद्रराव और तारा अपने बेटे वंदु, रंजन, अंकन के खुशी के बार में सोचते है। वंदु और रंजन दोनों वंती से प्यार

करते है। तारा उनके विवाह को पहले विरोध करती है। फिर मान जाती है। पर इंद्रराव को लगता है कि ''वंती से किसका विवाह करती? वंदु का या रंजन का? जिसका भी दिल टूटता, बहूत टूटता उस टूटने से हम में से कोई भी अच्छूता न रह पाता।''[43]

इंद्रराव तारा से अपने बच्चों को सँभालकर उन्हें इस दुःख से बाहर निकालने की बात करते हैं। इस नाटक में तारा को लेकर वंदु और रंजन के मन में क्रोध स्पष्ट होता है। लेकिन अंकन के मन पर इन सब घर की हालत का बुरा असर पडता है। उसे लगता है कि - ''माँ पहले हम सबमें कितनी रूचि लिया करती थी। अब हम अलग-अलग खुँटियों से बँधे पनीर के पानी की तरह बुँद-बुँद कर-करके टपक रहे है। पापा तो पुरी तरह रिस गए मालूम पडते हैं।''[44]

'प्रजा ही रहने दो' इस राजनीतिक नाटक में गिरिराज किशोर ने धृतराष्ट्र और गांधारी का मार्मिक चित्रण किया है। जब सुयोधन पांडवों की तरह मुक्ति चाहता है तब धृतराष्ट्र सुयोधन को स्वतंत्रता और उत्तराधिकार के भेद को बताते है, पर गांधारी अपने पुत्र के पक्ष में होकर उसे मुक्ति दिलाना चाहती है। वह कहती है, ''महाराज सुयोधन मुक्त होना चाहता है तो मुक्त हो जाने दें।''[45] गांधारी अपने पुत्र के मुक्ति के लिए धृतराष्ट्र से प्रार्थना करती है। इससे माँ की ममता का पता चलता है। जैसे माता-पिता अपने संतान के प्रति प्रेम रखते है वैसे ही संतान भी अपने माता-पिता को अपना सबकुछ मानते है। इस नाटक में कर्ण को जब विदुर सुतपुत्र कहकर अपमान करते है तो कर्ण उत्तेजित स्वर में कहता है, ''सुन सकते हो तो सुनों। नियोग-पंडित तुम्हारे भीष्म भी अवश्य जानते होंगे तुम्हारे इसी कुरूवंश की यशस्वी और चरित्रवान बहु कुन्ती ही मेरी कुमारी माँ है। तेजस्वी सूर्य मेरे पिता है। परंतु माता-पिता का माता-पिता होना मात्र जन्म देने से ही सिद्ध नहीं होता सारथी मेरे पिता है, उनकी पत्नी मेरी माँ है। जिन्होंने मुझे यह जीवन दिया है।

---

43. गिरिराज किशोर - 'नरमेध', पृ.21
44. वही, पृ.31
45. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो',पृ.83

उन्हें छोड़कर कुरूवंशियों की पाँत में बैठना मुझे स्वीकार्य नहीं।''[46] यहाँ कर्ण अपने जन्म देनेवाले माँ-बाप से ज्यादा पालनेवाले माँ-बाप को बहुत महत्व देता है। उनके लिए इतने बड़े कुरूवंश को ठुकराता है। यहाँ कर्ण की उदात्त भावना स्पष्ट होती है।

महाभारत की कथा आदर्श के संघर्ष की, पारिवारिक संघर्ष की कहानी है। धृतराष्ट्र, अंधा होने के साथ पुत्र प्रेम में अंधा, तो गांधारी की ममता भी इसी कोटी की है। सुयोधन की राज्य प्राप्ति यही सपना लेकर कार्य करनेवाली पिताजी संतान को मुक्ति देनेवाली ममत्ववाली गांधारी है। दो माता के बीच में घसीटा गया कर्ण है। जन्म देनेवाली माँ कुंती, तो पालन करनेवाली राधा, जनम देनेवाला असली पिता सूर्य, तो पालन करनेवाला सारथी यह कर्ण की विडंबना है। परंतु कर्ण दानी, ज्ञानी होने के कारण दोनों भी माता-पिता की सम्मान की रक्षा करते हुए आदर्श संतान बनता है। 'कौंतेय' होने के साथ-साथ 'राधेय' का भी अभिमान है। सिर्फ संतानोंत्पति तक माता-पिता का धर्म नहीं बल्कि संस्कार करना, भविष्य सजाने की जिम्मेदारी है। यह कर्ण का कथन संतान का विद्रोह स्पष्ट करता है। लगता है प्राचीन कथा का आधार लेकर नाटककारने नई व्यवस्था पर चिंतन किया है। आज भी कर्ण है, कुंती है। समाज को उसपर सोचना चाहिए यही संदेश दिया है।

गिरिराज किशोर का 'घास और घोड़ा' इस नाटक में पं.हजारीलाल अपने बेटी का ब्याह पंडित ख्यालीराम के बेटे के साथ करना चाहते है। यह बात पंडित हजारीलाल की पत्नी मानती नहीं वह कहती है कि, ''मेरा तो दिल नहीं ठूकता। वही ख्यालीराम जो द्वार पर घण्टों बैठा रहता है, उसका बेटा कलक्टर भी हो जाएगा तो ज्यादा से ज्यादा क्या हो जाएगा.....! मेरी बेटी कुछ भी हो जाए, मेरी बेटी तो रहेगी।''[47] प.हजारीलाल की पत्नी अपने और अपनी बेटी के सामने द्वारका और उसके बेटे को कम हैसियत वाले समझती है। यहाँ उसका

46. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.111
47. गिरिराज किशोर - 'घास और घोडा', पृ.30

अपने संतान के प्रति ममतामय प्रेम नजर आती है। बेटी के गलत बर्ताव के बावजूद वह अपनी बेटी के लिए अच्छे वर की तलाश करने की बात कहती है। इसमें अपनी संतान के प्रति माता-पिता के विचार प्रकट होते है जो बच्चों की भलाई चाहते है।

इस नाटक में जज की पत्नी अपनी तीन-चार साल की बेटी का ध्यान रखने को कहते हुए कहती है कि - "जरा खिला लो। नहाकर आती हुँ। किसी समय तो बच्चे को पास लगाया करो। हर समय दूर-दूर, परे-परे करने से बच्चे बिगड़ जाते है।"[48] माता-पिता ही बच्चों पर अच्छे संस्कार डाल सकते है। माता-पिता दोनों का प्यार मिलने पर बच्चों में बहुत से अच्छे सुधार हो सकते है। इसलिए जज की पत्नी जज साहब को बच्ची का ध्यान रखकर उसे अच्छी तरह परवरीश करने की सलाह देती है।

गिरिराज किशोर के 'जुर्म आयद' इस नाटक में जस्टिस शिवचरण की बेटी आशा अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर घर में माँ-बाप नहीं है ये देखकर आत्महत्या कर लेती है। कुछ ही देर में मिसेज चरण और जस्टिस शिवचरण आते है और बेटी की ये हालत देख मिसेज चरण आक्रोश करने लगती है, "किस बदनसीब घड़ी में हम दोनों घर से निकले ! हमारे लौटने का इन्तजार तो किया होता।"[49]

बेटी की मौत का मिसेज चरण को धक्का लगता है। वे जोर-जोर से रोने लगती है। जस्टिर शिवचरण सून्न रह जाते है। उन्हें अपनी संतान की मौत का दुःख होता है, "आशा चली गई! निर्दोष होकर भी गुनहगार हो गई !"[50] उन दोनों का आक्रोश यहाँ संतान प्रेम को दर्शाता है।

यहाँ स्पष्ट होता है माता-पिता,संतान परस्पर एक होना, समान विचार सूत्र का होना जरूरी है। जब माता-पिता बच्चे का भविष्य सजाना चाहते है

48. गिरिराज किशोर - 'घास और घोडा', पृ.101
49. गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद', पृ.36
50. वही, पृ.38

परंतु उसके पहले उसे सुसंस्कारी करे, पढ़े-लिखे-सँवारे। मानव कोई जानवर नहीं - जो सिर्फ संतान को जनम दे। मानव जीवन में पवित्र रिश्तें होने के कारण उसे निभाने पडते है। संस्कार करके संस्कृति की रक्षा की जाती है, संतान सुसंस्कारी हो तो माता-पिता का बुढ़ापा सुखमय बनाते नहीं तो नरक की यातनाएँ भुगतनी पड़ती है, तथा माता-पिता संस्कारी न हो तो संतानों की जिंदगी बरबाद होती है। स्पष्ट है तिनों का संस्कारी होना सबके हित में हैं, अच्छे समाज के लिए यह अनिवार्य है।

3.4.3 भाई-बहन -

संतान के दो रूप 1. बहन 2. भाई एक ही माता-पिता की यह दो संताने है। उनकी प्रवृत्तियाँ, मनोवृत्तियाँ अलग-अलग होती है। भाई-बहन का खून का रिश्ता होने के साथ-साथ भावुकता से परिपूर्ण होता है। खून के साथ माना हुआ रिश्ता भी समाज में है। यह रिश्ता भावुकता पर टिका है - इसे संभालना-निभाना पडता है। एक ओर यह पवित्र है तो दूसरी ओर जिम्मेदारी का होता है। बहन की रक्षा करनेवाला भाई पिता के समान होता है। तो भाई की भलाई चाहनेवाली बहन ममता का प्रतिनिधि है। भारतीय संस्कृति में यह संबंध आज भी सर्वमान्य सार्वकालीक रहा है। अन्य रिश्तें टूटे-बिघडे परंतु यह पवित्र बंधन आज भी शाश्वत है - न उसे पाश्चात्य विचार भ्रष्ट कर सके न नई मान्यता उखाड सकी - इससे ही उसकी मजबूत धारणा स्पष्ट होती है।

भाई, बहन की सुरक्षा, सुख और शांति चाहता है। इसके लिए स्वयं कष्ट उठाता है।

गिरिराज किशोर के 'घास और घोड़ा' इस नाटक में ख्यालीराम के बेटे द्वारका को माँ बहन को संभालने के लिए कहती है, तो द्वारका अपनी पढ़ाई छोडकर अपनी बहन की सेवा में लग जाता है। बहन उसे तंग करती है। माँ के फिर बुलाने पर द्वारका कहता है - "ये बिट्टो तंग कर रही है कहती है - तुम धोओ!"[51] बड़े भाई को अपनी छोटी बहन की सेवा करते समय बहन के प्यार के

51. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.26

कारण ये भी काम करना पड़ता है। उसे अच्छा-गंदा भी मानना नहीं चाहिए। बहन-भाई के प्यार का पवित्र रिश्ता यही है।

गिरिराज का नाटक 'घास और घोड़ा' में विमला का भाई विमला को गलत रास्ते पर जाने से रोकता है। वह उसे बताता है, ''जीजा को प्रधान के बेटे का आना पसन्द नहीं।''[52] वह अपनी बहन का संसार बचाने के लिए जीजा को भी समझाता है। कि - ''जीजा तुम बहन को माफ कर दो.... मैं उसे समझा लूंगा।''[53] अपने जीजा से भी माफी माँगता है बहन की गलती के लिए। वह अपने बहन की जिंदगी बचाने के लिए विमला को प्रधान के बेटे से न मिलने की सलाह देता है। विमला भाई का कहना मान लेती है। विमला प्रधान के बेटे को अपने भाई के बारे में बताती है कि - ''मेरा भैय्या आज तक मेरे सामने नहीं बोला। जरूर उनकी आत्मा दुःखी होगी... वह मेरा अकेला भाई है। उसकी बात मैं कैसे टालूँ।''[54]

भाई के कहने पर विमला प्रधान के बेटे को घर न आने को कहती है। उसके बाद गुस्से से प्रधान का बेटा विमला के पति का कत्ल करके उसका इल्जाम विमला के भाई पर थोंपता है। विमला की बदनामी ना हो इसलिए भाई चुप रहता है। जिसके परिणामस्वरूप उसे फाँसी की सजा सुनाई जाती है। अपनी बहन के लिए वह फाँसी जाता है। अपना बलिदान देता है। पर कुछ नहीं कहता। विमला का भाई एक अच्छा भाई और संरक्षक के रूप में चित्रित हुआ है। जो स्वयं कष्ट भोगता है अपनी जान गंवाता है। पर बहन के खिलाफ कुछ नहीं बोलता और मौत को गले लगा लेता है।

3.4.4 माँ-बेटी -

माँ-बेटी नारी के ही दो रूप है। विवाह पूर्व बेटी और विवाहोपरांत माँ बनती है। दोनों रूपों में ममता, वात्सल्य, प्रेम के दर्शन होने से नारी का

---

52. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.62
53. वही, पृ.68
54. वही, पृ.64

भावूकता से परिपूर्ण यह रूप है। माँ-बेटी रिश्तों को संभालनेवाली नारी आज भी आदर्श रही है। साहित्य में नारी के ये दोनों रूप प्रभावी बने है। संतानोत्पत्ति के कारण नारी के बने दो रूप होकर भी भावात्मकता में समान है।

नारी का माता रूप नारीत्व की सार्थकता माना गया है। उसके माता रूप में वह ममता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मानी जाती है। मातृत्व के कारण नारी को परिवार में महत्त्व भी मिलता है। माता के रूप में वह महान होती है। माँ बेटी का रिश्ता ममता, प्यार, वात्सल्य के साथ दोस्ती तथा सहेली का भी होता है। बेटी के हर सुख-दु:ख, अच्छाई-बुराई में माँ ही उसका साथ देती है।

'घास और घोड़ा' नाटक में प.हजारीलाल अपनी बेटी के जाट ड्राइवर के साथ संबंधों के कारण बेटी पर नाराज होकर उसका रिश्ता तय करने की सोचते है। तब पं.हजारीलाल की पत्नी अपनी बेटी की तरफदारी करने लगती है। ''गलती किससे नहीं होती? बच्चा गलती कर दे तो क्या उसे अपने हाथों कुएँ में धक्का दिया जाता है।''[55] अपनी बेटी के जाट ड्राइवर के साथ के अनैतिक संबंधों के बावजूद उसकी माँ उसकी ओर से बोलती है।

'केवल मेरा नाम लो' इस नाटक में सुलभा की माँ रागिनी का स्वर्गवास हो गया है। पर सुलभा अपनी माँ की तस्वीर से सवाल करती है कि - ''मुझे बीस-बाईस वर्ष की उम्र तक तुमने अपने कलेजे से लगाकर रखा, गोदी में सिर रखकर सुलाया मैं पूछती हुँ.... पर अन्त में यहाँ क्यों छोड़ गई?''[56] सुलभा अपनी माँ को बहुत याद करती है माँ के जाने पर भी उसे लगता है कि माँ को पुकारकर बुला लूँ और उनसे अपनी सब बाते बता दुँ सुलभा अपनी हर सुख-दु:ख की बात दिल का दर्द अपनी माँ की तसवीर के सामने कहती है। रजनी के तस्वीर हटानी बात पर कहती है, ''मुझे लगा मम्मी का यह फोटो मेरे चारों ओर मम्मी के होने का वातावरण बनाए है। इसके उतरते ही मैं मातृविहीन हो जाऊँगी।''[57]

---

55. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.31
56. गिरिराज किशोर - 'केवल मेरा नाम लो', पृ.264
57. गिरिराज किशोर - 'केवल मेरा नाम लो', पृ.272

सुलभा अपने दिल की बात रजनीकांत को बताती है। उसे अपनी माँ की तस्वीर से बहुत बड़ा सहारा मिलता है। इस नाटक में गिरिराज वे सुलभा की घुटनभरी जिंदगी का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। सुलभा के दिल का दर्द, मन की व्यथा प्रस्तुत करने में सफल हुए है।

'जुर्म आयद' इस नाटक में एक मजबूर माँ का चित्रण किया है, जो बेटी के जन्म से शायद हालात संभले ऐसा सोचती है। लेकिन हुआ उल्टा। "पति ने बच्ची का बाप होने की सच्चाई तक को नकार दिया। जब तक मन गलाजत अपने तक महदुद थी, उम्मेदी चुपचाप सह रही थी। मासुन बेटी तक पहुँची तो वह अपना संतुलन खो बैठी। कौन जाने आगे चलकर इस बेगुनाह बच्ची के साथ क्या सलूक हो।"[58] ये सोचकर वह अपने दिल पर पत्थर रखकर अपनी बेटी को लेकर आत्महत्या करने जाती है। नदी में कुद पडती है, उम्मेदी बच जाती है। लेकिन बेटी मर जाती है। इस नाटक में माँ के ममता की बहुत बड़ी कुर्बानी का चित्रण हुआ है।

आशा की मौत पर ज.शिवचरण कानूनी कारवाई पूरी करने हेतु पुलिस को बुलाते है तब मिसेज चरण बेटी के प्यार के कारण और अपनी ममता, वात्सल्य के कारण गुस्से में जस्टिस शिवचरण को कहती है,"फैसले देते-देते तुम्हारा दिल पत्थर का हो गया। अपनी बेटी तक को नहीं बख्शा। पुलिस को बुला लिया। जिंदगी तो खत्म हो गयी, अब क्या मिट्टी भी ख्वार होगी?"[59] बेटी के प्रति माँ कि ममता यहाँ स्पष्ट नजर आती है, जो अपने पति को भी कोसती है। माँ के लिए बच्चे सबसे प्यारे होते है बच्चों के लिए माँ किसी से भी बैर मोड ले सकती है। मिसेज चरण भी अपनी बेटी की मौत के कारण तडपती है। रोती है।

अतः यहाँ स्पष्ट है माँ अपनी बेटी की चिंता से परेशान है। उसे सबसे अधिक चिंता बेटी के विवाह की है, उसे अच्छा पति मिले, उसका जीवन फुले, फले, सुखी बने इसी का चित्रण 'घास और घोड़ा' में किया है। पंडितजी बिगडी बेटी का विवाह ड्राइव्हर से तय करते परंतु पत्नी को अच्छा नहीं लगता बेटी

58. गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद', पृ.272

59. वही, पृ.41

का पक्ष लेनेवाली माँ बेटी की रक्षा करती है। तो दूसरी ओर बेटी अपना दुःख दर्द पिता की अपेक्षा माँ के पास प्रकट करती है यदि माँ न हो तो उसकी तस्वीर, प्रतीमा में भी उसके अस्तित्व को मानती है, उसे अपनी कहानी कहकर दुःख का बोझ हलका करने का प्रयास करती है, इसका चित्रण 'केवल मेरा नाम लो' में किया है। यह मनोवैज्ञानिक चित्रण लगता है। पुरूष प्रधान, अहंकारी समाज में कभी-कभी पिता अपने बेटी के अस्तित्व को नकारता है तब माँ -नारी की अस्मत को ठेस पहुँचती है तब वह विद्रोह करती है। नारी का अबला रूप यहाँ विद्रोहीनी बनता है। 'जुर्म आयद' इसी कोटी का नाटक है। यहाँ नाटककार गिरिराज ने नारी के दोनों रूपों पर सही प्रकाश डाला है।

3.4.5 पिता-पुत्र संबंध -

माँ-बेटी स्त्रीलिंगी रिश्ते तो पुरूषों में पिता-पुत्र है। पुरूष के ये दो रूप अपने-अपने दृष्टी से महत्त्वपूर्ण है। विवाह-संतानोत्पत्ति में बने यह रिश्ते संतानोत्पत्ति में बने पिता, उसके पहले बचपन में बेटा अर्थात दोनों भी जिम्मेदारियाँ अलग-अलग उम्र की रहती है, परंतु महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व में है उसी तरह पुरूषों की पितृत्व में है। सामाजिक ऋण की दृष्टी से माता-पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। पुत्र को पुत्री की अपेक्षा बड़ा स्थान देना अनुचित है - बेटे को कुलदीपक मानकर नारी को अपमानित करना ठीक नहीं है।

पिता-पुत्र संबंध में खून का रिश्ता होता है। इस में सामान्यतः प्रेम, लगाव, अपनापन होता है। पुत्र घर का वारिस माना है। पिता अपने पुत्र को हर संकट से बचाने की कोशिश करते है। उसका दोस्त बनकर उसकी हर मुश्किल को हल करने में अपने बेटे की सहाय्यता करता है।

'नरमेध' में पिता-पुत्र के अच्छे संबंधों का चित्रण किया है। इंद्रराव अपने बेटों के दिल का दर्द समझते है। इसलिए वंती से किसी एक बेटे की शादी करके दूसरे बेटे के दिल को पीड़ा देना नहीं चाहते, वे कहते है, "वंदु और रंजन हमारे बच्चे है। हम उन्हें सँभाल लेंगे।"[60] यहाँ पिता के बच्चों के प्रति प्यार का चित्रण हुआ है।

'प्रजा ही रहने दो' में सुयोधन युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता नजर आता है। जो पिता को आदर और सम्मान नहीं देता। वह अपने पिता धृतराष्ट्र से स्वत्व चाहता है। मुक्ति चाहता है। धृतराष्ट्र द्वारा पांडवों की पक्ष में कि बात उसे अच्छी नहीं लगती। वह कहता है, "वे हमारे पितामह अवश्य है; पर उनकी आत्मा और शरीर बँटे है। हमारे हिस्से में तो उनाक वृद्ध शरीर ही आया है।"[61] इस नाटक में सुयोधन उस संस्कारहीन पीढ़ी का प्रतीक है जो हितैषी माता-पिता के प्रति भी कटू व्यंग्योक्तियाँ सुनाने में नहीं हिचकता।

'घास और घोड़ा' में प्रधान का बेटा विमला के पति का कत्ल कर देता है, प्रधान अपने बेटे को बचाने के लिए दरोगा के पास जाता है और उसके सामने गिडगिडा कर अपने बेटे को इस जुर्म से बचाने को कहता हैं। उसके लिए दरोगा को रिश्वत देते हुए कहता है कि "अकेला है। मेरा खानदान खत्म हो जाएगा।"[62]

बेटे के किये गुनाह के बावजूद प्रधान अपने बेटे को बचाने को जी जान से कोशिश करता है। झुठी रपट लिखवा देता,झुठे गवाह तैयार करना आदि घटनाएँ उनके पुत्र प्रेम दर्शाती है। यहाँ पिता की मतलबी प्रवृत्ति स्पष्ट नजर आती है। जो अपने वंश की चिंता में खुनी बेटे को बचा लेता है। इस प्रकार गिरिराज किशोर ने इस नाटक में प्रधान का चित्रण किया है। इस नाटक में पं.ख्यालीराम भी अपने बेटे की तारीफ करते है वे उसकी पढाई के बारे में कहते है,"मेरा तो मत था कि चिरंजीव द्वारिकानाथ शर्मा को संस्कृत पढाऊ परंतु इनकी माँ का आग्रह था बेटे को कानून ही पढाओं.... यह भी बड़ा मेधावी है।"[63] प.ख्यालीराम अपने पुत्र की तारीफ करते है। पिता अपने पुत्र के भविष्य को सँवारता हुआ यहाँ चित्रित हुआ है।

यहाँ स्पष्ट है नाटककारने 'नरमेध' में आदर्श पिता, प्यारे पिता को

60.गिरिराज किशोर - 'नरमेध', पृ.54
61. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.85
62. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.75
63. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.37

चित्रित किया है। तो 'घास और घोड़ा' में कातिल बेटे को छुडाने के लिए रिश्वत देनेवाले पिताजी को दर्शाया है। बदलती पिता की मनोवृत्ति का यही प्रमाण है। कातिल को सजा न देकर कुलदीपक के नाम से उसकी रिहाई चाहना कहाँ ठीक है? यही सवाल है। तो 'प्रजा ही रहने दो' में चित्रित सुयोधन आज की नई पीढ़ी का प्रमाण है, जो संस्कारहीन, माता-पिता की न माननेवाला है। ऐसी पीढ़ी समाज, परिवार, राष्ट्र के लिए खतरा है। नाटककार ने दोनों ही प्रकार के पिता-पुत्र को दर्शाकर अपनी सुझबुझ स्पष्ट की है - और आदर्श की कामना की है।

3.5 नारी जीवन -

स्त्री और पुरूष समाज के महत्त्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति में 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव' कहकर माता का स्थान पिता और गुरू से पहले निश्चित किया है। शंकराचार्य जी ने माँ की देवत्व प्रधान किया, तो अर्धनटनारीश्वर यह कल्पना भारतीय संस्कृति की अद्‌भूत देन है। भारतीय नारी का स्थान पाश्चात्य नारी से भिन्न, अनोखा, महत्त्वपूर्ण रहा है। प्राचीन समाज व्यवस्था में नारी को स्वतंत्रता थी, अधिकारसंपन्न नारी थी। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, यह तीनों रूप इसके प्रमाण है। सुंदरता, शक्ति, बुद्‌धि की प्रतीक नारी रही है। भारतीय समाज में नारी के लिए अबला, ललना, कामिनी, दामिनी, योगीता, निता, महिला, वधु, अबला गृहिणी, सहचारिणी, मादा, प्रमदा, वामा, मेना आदि कहा गया है। परंतु आज नारी का अबला ही रूप अधिक प्रचलित है।

''बहुपत्नीप्रथा और अनमेल विवाह प्रथा के कारण स्त्री का दर्जा हीन हो गया।''[64] भारतीय नारी का रूढि-प्रथा के कारण शोषण होता रहा है विवाह एक संस्कार होते हुए भी नारी के लिए अभिशाप बना है। आधुनिक युग में भी नारी इससे मुक्त नहीं है। आर्थिक क्षेत्र में नारी का पिछडना शोषण का कारण है, अतः वह भोग का साधन बनी। ''यह प्रवृत्ति सामंतीवाद का प्रतीक तथा नारी के देहिक शोषण का कारण बनी है।''[65] नारी के लिए पतिव्रता धर्म का पालन एक

---

64. आशाराणी होरा - 'भारतीय नारी दशा और दिशा', पृ.5
65. डॉ.रोहिणी अग्रवाल - हिंदी उपन्यासों में कामकाजी महिला 1992, दिनमान प्रकाशन दिल्ली,पृ.243

सामाजिक-सांस्कृतिकता का प्रमाण बना, नारी इसका पालन भी करती है।

आजादी के आंदोलन ने भारतीय नारी को घर से बाहर आने का अवसर दिया धीरे-धीरे नारी पढ़ने लगी-अपने अस्तित्व को समझने लगी, आजादी के आंदोलनों में नेतृत्व करनेवाली भारतीय नारीयाँ आज भी आदर्श बनी है। कमला नेहरू, कस्तुरबा गांधी, मादाम कामा, ॲनी बेझंन्ट, सरोजनी नायडू, सुचेता कृपालिनी, आदि इसके उदाहरण है। आजादी की प्राप्ति, संविधान का सहयोग, समाज सुधारकों का कार्य नारी आर्थिक क्षेत्र में संपन्न होने लगी। नौकरी करनेवाली नारी आत्मनिर्भर हुई। आज की नारी अपना अस्तित्व, अस्मिता की रक्षा कर रही है। ''आधुनिक नारियाँ महत्त्वकांक्षी है, प्रतिशोध से रही है और उनका लक्ष्य है पुरूष समाज।''[66] परंतु लगता है यह नारी का अल्प रूप है। संविधान से अधिकार संपन्न, जागरूक कितनी नारियाँ है?आज भी यही सवाल है।

यह सच है आज की आधुनिक नारी परिवर्तित हुई है। शिक्षित अधिकार संपन्न, चेतित नारी स्पर्धा करती है। नागरी स्त्री आगे है मात्र देहात की स्त्री में कितना बदलाव आया है ? यह अनुसंधान का विषय है। साहित्यकारों ने नारी के सभी रूपों पर विस्तृत विचार किया है। नारी की स्थिति और गति को शब्दबद्ध किया है।

नारी पर होते अन्याय और उसकी पीड़ाओं का यथार्थ चित्रण उपस्थित करने का गिरिराज किशोर का प्रयास सफल रहा है। आज भी समाज का नारी के प्रति देखने की दृष्टी जो है उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। इस संबंध में गायत्री माहेश्वरी ने कहा है -''नारी समग्र रूप से दुखी है। यानी हर वर्ग की नारियों में इस बात की समानता है कि वे अपने-अपने वर्गों के पुरूषों से पीड़ित और दमित होती है। वे उपर से चाहे कितनी भी स्वच्छंद क्यों न दिखाई पडती हो लेकिन भीतर से कही पुरूष की इच्छा की दासी होती है।''[67]

66.डॉ.रामेश्वर नारायन - साहित्य में नारी - विविध संदर्भ - 1990 नचिकेता प्रकाशन दिल्ली, पृ.10

67 'दैनिक हिंदुस्थान' - 13 दिसंबर 1992 दिल्ली, पृ.4

सामान्यतः देखा जाय तो आधुनिक नारी के व्यक्तित्व को पहचानना कठिन है। पर नारी यातना और पीड़ा का दर्द सहते-सहते असहाय हो गई है। उसमें शोषिता का बड़ा गुण है। आज भी नारी की भावनाओं को कुचल दिया जाता है। उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नकारा जाता है। नारी के हँसने, बोलने, चलने, घुमने पर पाबंदी लगायी जाती है। उसके हर बात का विरोध किया जाता है। पुरूष प्रधान संस्कृति में नारी को गौण स्थान देकर हीन माना जाता है। कुछ ही नारीयाँ इस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है। इस व्यवस्था के विरूद्‌ध विद्रोह करती है। तब उनके मन में स्वाभाविक इस सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ बदले की भावना जागृत होती है। और वह बदला लेने की ठाण लेती है।

3.5.1 नारी की द्‌वंद्‌वात्मक स्थिति -

नारी भावुक, शोषिक, अतीत की स्मृति को न भूलनेवाली है। उसका जीवन इसकी कहानी ही बनता है। विवाह से पहले प्रेमी, विवाह के पश्चात पति, संतान की स्मृतियों में अटकनेवाली आधुनिक नारी है। आज के साहित्य के लिए नारी के दर्शन होते है। परंपरागत नारी की अपेक्षा आज की नारी का व्यक्तित्व विद्रोही होने के साथ-साथ चिंतनीय बना है। पतिव्रता, यह संकल्पना नहीं रही बल्कि प्रेमिका यह रूप आज प्रभावी है। गिरिराज किशोर ने भी अपनी नाटक रचनाओं में ऐसा परिवर्तित प्रेमी नारी का चित्रण करके नारी का एक नया रूप दिखाया है।

'नरमेध' इस नाटक में तारा खुद के अंहम के कारण अपने जीवन में परेशानियाँ झेलती है। तारा पति प्रेम से असंतुष्ट एवं पूर्व प्रेमी नरेन की स्मृतियाँ सुरक्षित रखना चाहती है। तारा कई बार अपने पति इंद्रराव को नरेन समझ बैठती है और जब समझ में आता है की सामने इंद्रराव है तो नरेन को गालियाँ देने लगती है। शादी के बाद भी तारा अपने पूर्व प्रेमी नरेन को भुल नहीं पायी यहाँ उसकी द्‌वंद्‌वात्मक स्थिति का चित्रण हुआ है।

गिरिराज के 'घास और घोड़ा' इस नाटक में भी विमला पति के होते हुए शादी के बाद प्रधान के बेटे से प्यार करती है। वह प्रधान के बेटे को कहती

है, "पराई औरत, औरत कम कटपुतली ज्यादा हो जाती है। मुझे लगता है, न मैं तुम्हारे साथ औरत रह पाती हुँ न उनके साथ।"[68] इस संबंध के कारण विमला व अतंद्वद्व से घिरी हुई है। जब पति के साथ होती है तो उसकी चेतना पर उसका प्रेमी हावी रहता है और जब प्रेमी के साथ होती है तो उसके मन-मस्तिष्क पर पति हावी रहता है।

'जुर्म आयद' इस नाटक में मजबूर उम्मेदी की भी द्वंद्वात्मक स्थिति से गुजरना पड़ता है। पति और घरवालों के अत्याचार से परेशान उम्मेदी को दो ही रास्ते रह जाते है "शेरनी बनकर उनका खुन पी जाती, या फिर वही करती जो उसने किया।"[69] खुद को और अपनी बेटी को बचाने के लिए या तो उसे विद्रोह करना पडता या आत्महत्या इस द्वद्वात्मक स्थिति में वह अपना संतुलन खो बैठती है। और दुसरा रास्ता अपनाती है। आत्महत्या कर लेती है।

स्पष्ट है विमला और तारा एक ही स्थिति से गुजर रही होती है। पति के होते हुए भी वे प्रेमी की याद अपने मन में लाती है। यहाँ दोनों भी पति या प्रेमी में से किसी एक से संबंध रखने की यही द्वद्वात्मक स्थिति है।

द्वंद्वात्मक स्थिति नारी की मनोदशा का प्रमाण है - ऐसे हालत में जिसका स्वीकार करती है उसपर उसकी जिंदगी निर्भर है, नारी का विवेक, बुद्धि, संस्कार, भविष्य के सपने आदि के आधार पर नारी अपना फैसला लेती है। परंतु लगता है अधिकांश भारतीय नारी संस्कार संपन्न, शोषित होने के कारण पति को न चाहते हुए भी अंत में प्रेमी को छोड़कर पति का साथ देती है। यही उनकी चारित्रिक महानता है।

3.5.2 नारी जीवन की असहायता -

भारतीय नारी का अबला रूप हावी है। यह सच है भारतीय नारी कितनी भी पढ़ी लिखी हो वह अंततः पुरूष प्रधान संस्कृति की शिकार ही है। समाज परिवार पति, बच्चे,अफसर, अधिकारी आदि से शोषित नारी-नारी से भी

68. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा',पृ.64
69. गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.22

शोषित है। नारी सबलीकरण नारी आरक्षण आदि बातें कही जाती है। मगर कितना परिवर्तन हुआ या होगा? यह विवाद का विषय है। आज भी नारी की असहाय्यता का लाभ उठानेवाली प्रवृत्ति रही है परंतु इसका विरोध नारी करती है न नेता-समाजसुधारक। परंपरा से नारी शोषित रही है - ऐसा कहकर चुप्पी समझने का कार्य हो रहा है ऐसे असहाय नारी का चित्रण गिरिराज किशोर ने प्रभावी ढंग से किया है।

गिरिराज किशोर ने 'जुर्म आयद' और 'प्रजा ही रहने' नाटकों में उम्मेदी और द्रौपदी की असहायता को चित्रित किया है। नारी मानो समाज में एक उपभोग की वस्तु है। वासनांध पुरूष असहाय बनी नारी का शोषण करने के लिए हमेशा उद्युक्त रहे है। शोषण की शिकार बनी ये नारियाँ अपना दम तोड देती है।

गिरिराज का 'प्रजा ही रहने दो' इस राजनीतिक नाटक में द्रौपदी राजनीतिक खेल में फँसी एक असहाय्य नारी के रूप में हमारे सामने आती है। जिसके पाँच-पाँच पतियों के होते हुए शकुनी उसे भरी सभा में लाकर विवस्त्र करने की बात करता है, तो दुशासन वह कर्म पूरा करता है। इतने बड़े राज्य में उस वक्त उसकी सहायता करने कोई नहीं आता उसे खिंचते हुए सभा में लाया जाता है। द्रौपदी असहाय्य सी खडी रहती है। नारी का अबलापन यहाँ दिखाई देता है।

गिरिराज किशोर के 'जुर्म आयद' इस नाटक में असहाय्य उम्मेदी पर दरोगा और चीफ पुलिस थाने में अत्याचार करते हुए कहते है, ''घबराती क्यों है, बच गई तो मुल्क के काम आ जाएगी। मुल्क में तेरे जैसी चुस्त और जवान औरतों की कमी है। है ना?''[70]

यहाँ दरोगा की नीचता स्पष्ट दिखाई देती है। चीफ कहता है ''इसमें हमारा भी हिस्सा है।''[71] उसके इस कथन में उसकी वासना झलकती है। वे दोनों मिलकर लगातार आठ सालतक अन्याय करते है।

नाटककार ने उम्मेदी और द्रौपदी के माध्यम से नारी की असहायता

---

70. गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.13
71.गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.13

पर प्रतीकात्मक रूप में विचार किया है। द्रौपदी महाभारत की नारी, राज परिवार से जुड़ी नारी भी शोषित है, असहाय्य है तो सामान्य नारी की हालत कैसी रही होगी? यही चिंता का विषय है। 'यथा राजा तथा प्रजा' - यथा राणी तथा नारी कहा जाय तो सही होगा ? आज अफसरों की नीच हरकतों से नारी घायल बनी है। लुटी जा रही है। रक्षक पुलिस भक्षक बनी है - ऐसे हालात में खुद नारी को दामिनी-क्रांतिकारनी बनना होगा - आँसू बहाने की जगह अंगारे निकलना होगा - तभी नारी को फिर से सम्मान-अधिकार मिलेगा, ऐसा कहना अनुचित नहीं है।

3.5.3 पति के अत्याचार सहनेवाली नारी -

भारतीय समाज में नारी का सहारा पिता का घर और पति का संसार है। पति-पिता की सहाय्यता पर निर्भर भारतीय नारी है। पिता जनक, रक्षक तो पति की सेविका नारी बनती है। पति की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली पत्नी आदर्श पतिव्रता मानी गई है। फडके का कथन है - पतिव्रता धर्म के पीछे स्त्रियों का आर्थिक क्षेत्र में पुरूषों पर निर्भर रहना ही नारी स्थिति की अधोगति में महत्त्वपूर्ण कारण हो सकता है।''[72] पति की आश्रित, बनी नारी आर्थिक दुर्बलता को दर्शाती है,परंतु आज की पढ़ी-लिखी नारी आत्मनिर्भर बनकर पति या पुरूष प्रधान संस्कृति को लक्ष्य करके विद्रोह कर रही है। जादा तो पति आश्रित पत्नी है।

पति तथा परिवार वालों के अत्याचार सहनेवाली बहु आज दिखाई देती है। पति रखवाला माना जाता है परंतु वही भक्षक बनता जा रहा है - ऐसी हालत में नारी अकेली होती - शोषित बनकर खुदकुशी करने के लिए विवश होती है।

पुरूष प्रधान समाज में स्त्री का अस्तित्व नगण्य है। समाज में नारी का पति, परिवार, समाज आदि द्वारा बुरी तरह से शोषण होता है। विवाहित नारियों में बहुतांशी नारियाँ पति द्वारा किये शोषण की शिकार बनती है। पुरूष पर आश्रित स्त्री दासी रहती है।

72.संपा.य.दि.फडके - केतकर सेस संग्रह, पृ.77

'जुर्म आयद' इस नाटक में नायिका उम्मेदी शादी कर के बहुत से सपने लेकर पति के घर आती है। किसी भी दुल्हन को पति और उसके घर के लोगों से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा रखना स्वाभाविक ही है। वैसे ही उम्मेदी को भी थी। लेकिन कुछ ही दिनों में उसका निषेध मुक्त और स्वतंत्र व्यवहार ससुरालवालों की आँखों में खटकने लगा। वह बदलचन करार दे दी गई। इसमें पति ने भी घरवालों का साथ दिया। उम्मेदी को बेटी हुई। ''उसने सोचा, शायद हालात सँभले। बेटी का प्यार सबको एक बिंदु पर लाकर मिला दे। लेकिन हुआ उल्टा। उसके पति ने बच्ची का बाप होने की सच्चाई तक को नकार दिया।''[73] तब वह टूट गई। पति ही उसपर शक करता है तो वह अपना संतुलन खो बैठती है। पति के अन्याय के कारण वह आत्महत्या करने जाती है।

आशा का पति भी आशा पर अत्याचार करता है। वह आशा को जबरदस्ती अपने सेक्रेटरी साहब के पार्टी में ले जाना चाहता है। अपने लाइसेसं के लिए अपनी ही पत्नी को सेक्रेटरी साहब के पास भेजना चाहता है। आशा पति की इस मांग को पूरा नहीं करना चाहती तो पति आशा से कहता है,''बीवी की जगह पति के चरणों में होती है जिधर उसके चरण चले, उधर ही पत्नी का शीश झुकना चाहिए।''[74] आशा को वह धक्का देकर गिरा देता है। और उपर से लातों से पीटायी करता है। आशा इस हालत से परेशान होकर आत्महत्या करती है।

समकालीन नाटककार गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में पति के अन्याय,अत्याचार से पीड़ित नारी का चित्रण उम्मेदी और आशा के माध्यम से किया है। जो समाज में वर्तमान है। आज की इक्कीसवी सदी में भी औरत पर उसका पति जुल्म करता है। उसे आत्महत्या के लिए विवश किया जाता है। यहाँ नाटककार ने विवश नारी को दिखाया है। परंतु विद्रोही नहीं - इससे नारी का परंपरागत रूप हावी है।

आशा का पति विकृत मनोवृत्ति का प्रतीक है। क्या उसे पति

73.गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.22

74.वही, पृ.35-36

कहना कहाँ तक उचित है? यह कहानी काल्पनिक नहीं है, आज समाज में ऐसे पति दिखाई देते है जो अपने फायदे के लिए पत्नी को अवैध कर्म करने के लिए , अवैध यौन संबंध स्थापित करने के लिए विवश करता है - पति के नामपर यह धब्बा है। इसकी ओर संकेत किया है।

3.5.4 यौन संबंध से पीड़ित नारी -

भारतीय समाज व्यवस्था में यौन संबंधों की स्थापना के लिए विवाह के अतिरिक्त अन्य मार्गों को अपनाया जाता है। कुछ जातियों में स्वच्छंदी जीवनयापन के कारण यौन संबंध स्थापित करने की आजादी है, इसे हीन नही माना जाता। मनुष्य की काम एक प्रवृत्ति है, साहित्य में इसे चित्रित किया है। डॉ.रामदरश मिश्र के मतानुसार ''अधिकांश महानगरीय कहानियाँ और उपन्यास व्यक्ति की अहेतुक कामलिला को यौन संबंधों का यथार्थ रूप मान लेते है। आधुनिक समस्या बनाकर पेश करते है।''[75] यह कथन नाटककार पर भी लागू होता है।

परिवार और समाज का व्यक्ति पर नियंत्रण रहता है। जब विवाह के मामले में पुरूष या नारी स्वतंत्र नहीं होते तब प्रायः अवैध संबंध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। गिरिराज किशोर जी ने अपने 'घास और घोड़ा' इस में प्रेम और यौन संबंधों का चित्रण किया है। इस में विमला का प्रधान के बेटे के साथ अवैध संबंध है। प्रधान का बेटा विमला को कहता है ''तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता।''[76] विमला उसे बताती है की मैं औरत तो उन्हीं की हुँ। तो कहता है ''मेरे सिवाय तुम किसी की नहीं हो सकती। किसमें हिम्मत है, तुम्हे छू सके।''[77] विमला को अपने पति के दाँत गंदे लगते है और प्रधान के बेटे के उजले इस कारण वह प्रधान के बेटे की तरफ आकर्षित होती है। विमला भी मन से उसके बिना रहना नहीं चाहती। अपने बुढे पति से असंतुष्ट होकर पराये मर्द के साथ विमला अवैध यौन संबंध

---

75. धर्मयुग - 8 फरवरी,1976, पृ.18
76. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा', पृ.73
77. वही, पृ.64

स्थापित करती है।

इस नाटक में पं.हजारीलाल की बेटी भी जाट ड्राइवर से अनैतिक संबंध रखती है अपने कुल मर्यादा और खानदान के बारे में विचार किये बिना संबंध रखती है। जिसके कारण प.हजारीलाल को कही मुँह दिखाने को जगह नहीं है। वे अपनी बेटी के कर्मों को कोसते है।

आजकल समाज में अनैतिक संबंध बढते ही जा रहे है। समाज में नैतिकता घटती जा रही है। इस कारण समाज व्यवस्था बिगड रही है। इसपर साहित्यकारों ने संकेत किया है। यौन संबंधों में धर्म,कर्म, जाति, कुल पर विचार नहीं किया जाता इसीकारण अनैतिकता का सवाल उपस्थित होता है। पराए मर्द के साथ नारी का यौन संबंध रखना अनैतिक माना गया है - ऐसे नारी को पापिनी, कलंकिनी कहा जाता है। इसमें सिर्फ नारी को दोषी मानना उचित नहीं, परंतु यह हो रहा है। नारी शोषण का यह एक आयाम बना है।

3.5.5 प्रेम में असफल नारी -

नारी का मन भावुक, कोमल होता है। नारी प्रेम, वात्सल्य, ममता, करूणा का प्रतीक है। प्रेम भारतीय नारी की अनोखी प्रवृत्ति है। प्राचीन युग में नारी मन से प्रेम करती थी। निस्वार्थी नारी प्रेम करती है। पति, पुत्र, माता-पिता, भाई से प्रेम करनेवाली नारी प्रेम के लिए सर्वस्व निछावर करती है। संतो-भक्तों ने नारी के इस रूप की महिमा गायी है, परंतु आज धन को सर्वस्व मानने की प्रवृत्ति ने प्रेम के पवित्र रूप को भी लांछित किया है। आधुनिक नारी का यह प्रेम वासना में बदली है। इसीकारण यह शोषित बनी है।

आज परकिया प्रेम बढ़ रहा है। एक दो-तीन प्रेमियों से प्रेम करनेवाली नारी है। लगता है वह प्रेम का नाटक करती है। इसपर भी साहित्यकारों ने करारा व्यंग्य किया है। ऐसा प्रेम आदर्शवत नहीं कहा जाता, जो संतों को अभिप्रेत रहा है। मन से किया गया, निस्वार्थी प्रेम श्रेष्ठ होता है।

प्रेम एक भावनिक संवेदना, प्रवृत्ति है। लेकिन वह प्यार सफल नहीं हुआ तो उस व्यक्ति के दिल को बहुत बड़ी चोट लगती है। उसकी जिंदगी निराशा से भर जाती है। गुजरे जमाने की यादें संजोये उसे सताती है। इस भावना को गिरिराज जी ने अपने नाटक 'नरमेध' में मानसिक कुंठा के रूप में प्रस्तुत किया है।

'नरमेध' में तारा शादी से पहले नरेन से प्यार करती थी। अपने अंह के कारण तारा नरेन से शादी नहीं कर पाती, लेकिन शादी के बाद भी अपने प्रेमी नरेन के साथ बिताये सुखमय क्षणों की स्मृति संजोये रहती है। तारा जानती है कि प्रेम कितना दुःख देता है। इतनी जल्दी वह पीछा नहीं छोड़ता। तारा शरीर से तो नरेन से दूर हो गयी। पर मन से अलग नहीं हो पायी। इसीकारण वह शादी के बाद भी उसकी याद में घुट-घुट कर जीती है, मरती है।

इस नाटक की नीरा तारा की सहेली है। वह भी असफल प्रेमिका है। वह भी नरेन से प्रेम करती थी। तारा के परिवारवालों के साथ नीरा भावुकता से व्यवहार करती है। लेकिन तारा उससे अच्छा बर्ताव नहीं करती। नीरा का चरित्र किसी-न-किसी अज्ञात आवेग, अंतद्वद्व, घात-प्रतिघात, तिलमिलाहट एवं मर्मवेदना से अनुप्रणित रहा है। एक उत्कट नारी-पात्र के रूप में नाटककार ने नीरा का चित्रण किया है।

3.5.6 विद्रोही नारी -

अबला शोषित नारी का परिवर्तित रूप विद्रोही नारी है। आज की शिक्षा, आरक्षण नीति, संविधान की सहायता, नारीसंगठन, नारी मुक्ति आंदोलन से नारी जागरूत हो रही है। अपने अधिकार, अस्तित्व, हक्क की रक्षा के लिए आगे आ रही है। सामाजिक चेतना, क्रांति का प्रसार होने से नारी की सोच, आचार, व्यवहार में बदलाव आया है। जिससे अबला नारी 'दुर्गा' बनकर अपना पुराना विद्रोही रूप दिखा रही है। प्रूरुषों की मनमानी को नकारनेवाली नारी विद्रोही बनी है। साहित्यकारों ने ऐसे नारी का चित्रण करके अनछूए नारी के रूप पर प्रकाश डाला है, जो समय की मांग है।

अपने ऊपर होते अत्याचारों के खिलाप आवाज उठाना या विरोध करना ही विद्रोह होता है। विद्रोह के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ.उपाध्याय ने लिखा है - ''जिसमें जीवन और समाज की असंगतियों के विरूद्ध संघर्ष प्रक्रिया के रूप में स्वीकृत होता है और प्रयोजन होता है पूर्णता उसे वास्तविक विद्रोह कहते है।''[78] विद्रोह एक प्रकार से व्यवस्था और व्यक्ति द्वारा होनेवाले अन्याय का विरोध ही है। नारी चरित्र अब विद्रोही चरित्र बनकर उभरने लगा है, जो समाज जीवन में होनेवाली प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। गिरिराज जी ने अपनी रचना में ऐसी नारी पर प्रकाश डाला है।

'प्रजा ही रहने दो' इस नाटक के केंद्र में द्रौपदी है, जिसे विदुर 'क्रांति रूपा' कहकर संबोधित करते है। परंपराओं के विरूद्ध जीना जिसका स्वभाव है। वह पाँच पतियों की पत्नी बनकर सोचती है कि - ''मैं रोटी का टुकडा थी या राजनीतिक का सुत्र।''[79] अपने वाचालता के लिए उसका तर्क है कि यह स्वर आपकी बहु का न होकर छलबल से सतायी गयी प्रजा का है। रानी बनना उसकी स्वतंत्रता का अपहरण है। इसलिए वह आग्रह करती है कि ''मुझे मुक्त कर दो। कुछ समय के लिए रानी बनकर मैंने परतंत्रता का वरण कर लिया था......मुझे अपनी चक्की में ही पिसने दो। मैं प्रजा हुँ, मुझे प्रजा ही रहने दो।''[80] द्रौपदी अपने ऊपर हुए अन्याय के कारण राजसिंहासन का विरोध करती है। उससे विद्रोह करती है।

गिरिराज किशोर का 'केवल मेरा नाम लो' इस नाटक में सुलभा पर उसके पिता रजनीकांत गुस्सा करते है। उसे पापा के बजाय केवल रजनी नाम से पुकारने के लिए कहते है। स्वाभिमानी सुलभा अपने पिता का आदर करती है वह उन्हें नाम से पुकारने के लिए तैयार नहीं होती तब रजनीकांत उसे कोडों से मारने लगते है। और नाम लेने की जिद्द करते है तो सुलभा कहती है कि ''प्राणों

---

78. डॉ.विश्वंभरनाथ उपाध्याय - समकालीन सिद्धांत और साहित्य,पृ.25
79.गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो',पृ.55
80.वही, पृ.110

रहते....... नहीं।"[81] सुलभा अपने संस्कारों और पिता के प्रति आदर के कारण जान देने को तैयार होती है पर नाम नहीं लेती। पिता के खिलाप विद्रोह करती सुलभा का चित्रण हुआ है।

'जुर्म आयद' इस नाटक में अनपढ़ और असहाय्य नारी उम्मेदी पर पुलिस दरोगा और चीफ अत्याचार करते है और आशा पर उसका पती अत्याचार करता है। उम्मेदी का अत्याचारी पुलिस दरोगा के साथ तथा आशा का अपने अत्याचारी पति के साथ संघर्ष करती है। उसमें सफलता नहीं मिलती किंतु दोनों परिस्थितियों के आगे चुपचाप आत्म-समर्पन भी नहीं करती है। उनके विरोध करके लड़ते-लड़ते वे दोनों अपनी जान दे देती है।

इस प्रकार आज की नारी अपने ऊपर होनेवाले अन्याय चुपचाप नहीं सहती उसके विरोध आवाज उठाती है। समाज व्यवस्था के खिलाप लडती, झगडती है और अपना अस्तित्व कायम रखने की कोशिश करती है। नारी में स्वयं के प्रति जागृति आ गयी है। उसमें क्रांति की भावना का उदय हो गया है, ऐसा लगता है। नई समाज व्यवस्था की यह नींव है, यह मजबूत होना चाहिए। यही संकेत दिया है।

3.5.7 नारी में प्रतिशोध की भावना -

नारी अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को एक सीमा तक सहती रहती है। लेकिन जिस समय उसकी सीमा खत्म हो जाती है तब वह उसका प्रतिशोध लेने की ठान लेती है तब वह बदला लेकर ही रहती है।

'प्रजा ही रहने दो' इस नाटक में द्रौपदी को जुए में हारने के बाद शकुनी के कहने पर उसके बाल खिंचकर लाते है और भरी सभा में लाकर उसके वस्त्र आभूषण से और एक चाल खेलने की बात होती है तो उसके इस अपमान के वक्त कौरवों की वधुए जो इस खेल को देखती रहती है वह हँसती है, उनके इस हँसी से द्रौपदी और अपमानित होती है, तब वह इस अपमान की अग्नी में जल

81.गिरिराज किशोर - 'केवल मेरा नाम लो',पृ.284

उठती हैं और इस अपमान का प्रतिशोध लेने की ठान लेती है और अपने पति युधिष्ठिर को कहती है, "मैं यदि कोई स्वप्न पालूँगी तो अपने अपमान के प्रतिशोधा का ! मेरे चीरहरण के समय कौरवों की स्त्रियाँ ठठाकर हँस रही थीं। अब मैं उनके रूदन की बानगी भी देखना चाहती हुँ।"[82] इस प्रतिज्ञा के साथ वह अपने सारे रिश्ते-नाते तोडकर प्रतिशोध पुरा करने के लिए वन में जाती है। द्रौपदी के माध्यम से बदले की भावना दिखाई है।

यहाँ स्पष्ट है अबला नारी चेतित बनेगी तब विद्रोही बनकर प्रतिशोध लेगी। नारी चेतना आज की अनिवार्यता है। साहित्यकारों ने ऐसे नारीपात्र बनाए है जो यही कार्य करते है। महाभारत की द्रौपदी का जीवन इसका प्रमाण है। नारी वह चिनगारी है जो विघातक तत्वों का नारा करती है। नारी अपना प्रतिशोध कभी खुद लेती है तो कभी दूसरों के हाथों पूरा करवाती है। जैसे महाभारत में द्रौपदी ने पांडवों के हाथों कौरवों का प्रतिशोध की पूर्ति करती है।

3.6 आम आदमी का जीवन -

आज साहित्य का मूल उद्देश्य आम आदमी के जीवन को चित्रित करना है। प्राचीन काल से महलों, राजवाडों में बद्ध साहित्य आधुनिक युग में झुग्गी झोपडी तक पहुँचा है। प्रेमचंद ने यह कार्य किया है। 'प्रगतिशील साहित्य संघ' की स्थापना होना इसका प्रमाण है। आम-आदमी का अर्थ सामान्य से सामान्य आदमी गरीब, पिछडा, उपेक्षित, निम्नस्तर का जीवन यापन करनेवाला व्यक्ति है। इससे मानव का दर्द भरी कहानी सुनायी देने लगी। आम-आदमी जब साहित्य का विषय बना तब से उसकी वास्तविकता, यथार्थता प्रभावी बनी। इस चित्रण में काल्पनिकता नहीं रहती। सच्ची, शाश्वत साहित्य का यही प्रमाण है। गिरिराज किशोर एक ऐसे साहित्यकार है जिनके उपन्यास, कहानी, नाटकों का केंद्र मानव सामान्य मानव, आम आदमी है। साहित्यकारों नगरों के साथ झुग्गी झोपडी का, राजा के सत्य प्रजा का चित्रण करके अपना दायित्व निभाया है।

---

82. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.57

गिरिराज किशोर ने अपने 'प्रजा ही रहने दो' इस में प्रजा के मनोविज्ञान और पीड़ाजन्य कुंठा को प्रभावी ढंग से उद्घाटित किया है। इस नाटक में द्रौपदी, नागरिक, प्रहरी आदि पात्र प्रजा का प्रतिनिधित्व करते है। प्रजा तुच्छ होती है। प्रजा बेसिर पैर की बातों पर विश्वास करती है। अतिरंजित बातों पर तुरंत विश्वास करनेवाली और तुरंत भूलनेवाली प्रजा ऊटपटांग बाते करने में निपुण होती है। ''प्रजा सामान्य है उसका अस्तित्व नगण्य है। उस पर अन्याय होता है। वस्तुतः नाटककार ने इस नाटक में अन्याय और अन्याय के वातावरण में पीड़ित मानव के कुंठाग्रस्त दिगभ्रांत एवं उलझावपूर्ण जीवन की निराशा एवं करूणा को व्यक्त किया है।''[83]

प्रजा का नित्य शोषण दमन होता है। वह अपनी इज्जत को बड़ा महत्व देती है। प्रजा की भावनाओं, गतिविधियों और क्रियाकलापों का कोई महत्व नहीं होता। वह रात-रात भर जागते है। कोई आता है तो खडे हो जाते है। उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। प्रजा की व्यथा यह है कि, किसी को प्रणाम करे तो भी उसका उत्तर नहीं मिलता। उसे कितना ही रौंदा, कुचला जाए तो भी वह मुक रहती है। अन्याय के खिलाप आवाज नहीं उठाती। इस प्रकार प्रजा के उत्पीड़न और मनोवेदना को नाटककार ने व्यक्त किया है।

गिरिराज किशोर के 'चेहरे-चेहरे किसके चेहरे' में भी आम आदमी के जीवन का चित्रण मिलता है। महान चेहरे के शब्दों में ''मुझे उन लोगों पर भी गर्व है.... वे सच्चे, भोले-भाले और निष्ठावान प्रजा हैं। पिसते-पिसते उनकी आँखों में अन्धें कुएँ खुद गए है, अत्याचारों ने खोद दिए है। वे उन्हीं कुओं में लटके अपना दम तोड रहे है।''[84]

इससे आम आदमी की पीड़ा को समझा जा सकता है। इस नाटक में पहला पात्र अपनी पहचान को खोजते हुए कहता है कि''मैं कौन? क्या पहचान में आता हुँ ? आदमी। आदमी क्या होता है? आम आदमी आम फल भी और

---

83. डॉ.लक्ष्मीराय -'आधुनिक हिंदी नाटक चरित्र-सृष्टि के आयाम', पृ.428
84. गिरिराज किशोर - 'चेहरे-चेहरे किसके चेहरे',पृ.202

आदमी भी, इसीलिए आम भी खाया जाता है और आदमी भी। मुझे लगता है मैं दीवार के सहारे झुककर घुटनों पर हाथ धरे चुपचाप खड़ा हुँ। कोई भी मेरी पीठ पर पाँव रखकर छींके तक पहुँच सकता है। हो सकता है दीवार ही फाँद जाय।''[85]

यहाँ इन पात्रों के कथन से आम आदमी की व्यथा स्पष्ट होती है। आम-आदमी की पहचान गुम हो रही है। उसका कोई भी शोषण करता है।

3.7 सत्ता की लालसा -

मानव जैसा समाजप्रिय प्राणी है, उसी तरह अपना अधिकार सत्ता स्थापित करनेवाली लालसा रखनेवाला भी है। राजा हो या रंक अपने अधिकार की रक्षा करना चाहता है। दूसरों को गुलाम बनाए रखने की उनकी प्रवृत्ति साहित्य का विषय बनी है। राजा-महाराजाओं की इसी प्रवृत्ति के कारण युद्ध हुए है। इसका इतिहास का हर एक पन्ना इसका सबूत है। सत्ता विस्तार की भावना मानव को पशू बनाती है। सत्ता में मद, अहं, स्वार्थ होगा तब वह सत्ता हानीकारक होगी, परंतु दार्शनिककों में मन पर राज करने को सत्ता माना है। यहाँ ऐसी सत्ता नहीं बल्कि राज्यविस्तार को सत्ता माना गया है। साहित्यकारों ने भी ऐसे प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। गिरिराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' यह नाटक इसी बात का प्रतीक है - सत्ता की लालसा मानव को दानव बनाती है यह संदेश दिया है। इसके संदर्भ में सरला गुप्त लिखती है,''सत्ता लोलुपता वर्तमान जीवन का कटू यथार्थ है। सत्ता की भूख व्यक्ति में बढ़ती ही जाती है।''[86] पद प्राप्ति के लिए सारे मूल्यों और नैतिकताओं को दांव पर लगाया जाता है। धृतराष्ट्र अंधा है फिर भी सत्ता पिपासू है। वह केवल अपने जीवन काल तक ही नहीं बल्कि उसके पश्चात भी अपने पुत्रों के हाथ सत्ता की बागडोर देखना चाहता है। वह अपनी सत्ता का, अधिकार का और शासन का विस्तार करना चाहता है। उसकी इसी मनोवृत्ति को उद्घाटित करते हुए नागरिक कहते है ''राजा को तभी कष्ट होता है जब उनका राज्य छोटा पडे!''[87] यही अमिट सत्ता पिपासा उसे अमानवीय, खुँखार, हिस्त्रं तथा विवेकशून्य

---

85. गिरिराज किशोर,'चेहरे-चेहरे किसके चेहरे', पृ.214
86.सरला गुप्ता 'भुपेंद्र' - 'समकालीन हिंदी नाटक : चेतना के आयाम', पृ.131
87. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.5

बना देती है। सत्ता पिपासा की शाश्वत चाह के संदर्भ में नरनारायण राय के विचार महत्त्वपूर्ण है "सत्ता पाने और सत्ता में बने रहने की चाहत केवल महाभारत काल का ही सत्य नहीं था। महाभारत के बाद का भारतीय इतिहास भी इसी को दुहराता हुआ मिलेगा और महाभारत काल के बाद का इतिहास भी यही सिद्ध करता है कि सत्ता की लालसा के किटाणू आज तक हमारे रक्त में विदयमान रहे है।"[88]

शासकों में साम्राज्यवादी लिप्सा तो होती है। किंतु सत्ता सुरक्षा के लिए कुटील चालें भी चलते है। नई-नई चालें चलकर अपने शासन अधिकार और प्रभाव को सुदृढ बनाने के लिए वे हमेशा प्रयत्नशील रहते है। 'प्रजा ही रहने दो' में कुटिल चालों की शिकार द्रौपदी विदुर से कहती है "मुझे कभी नहीं लगा कि यहाँ मनुष्य है,उनकी भावनाएँ है। केवल यही लगता रहा कि यहा चालों के सिवाय कुछ नहीं।"[89]

स्पष्ट है कुटिलता राजनीति सत्ताप्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका प्रयोग सत्ताधिस अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए करते है। राज्य पाने की लालसा से अंधा बना मानव शैतानी कर्म करता है, अपना स्वार्थपूर्ति का प्रयास करनेवाला राज्य प्राप्त करने में सफल बनता है। आज की राजनीति इसी का प्रमाण है। लगता है राज्य प्राप्ति यही देशसेवा का साधन मानी है।

3.8 भ्रष्ट राजनीति-

आज साहित्य का क्षेत्र व्यापक, बहुआयामी बना है। इसमें कोई भी विषय अछूता नहीं। आज की राजनीति साहित्य को विभिन्न विचारधाराओं के रूप में प्रभावित करती है। जैसे, गांधीवाद, प्रयोगवाद, मार्क्सवाद, प्रगतिवाद आदि। राजनीति विधायक होने से देश का विकास होता है जब तक उसमें आदर्शवाद, सेवा समर्पण का भाव रहता है तब तक ऐसी राजनीति देश के हित में होती है। परंतु जब उसमें सत्ता प्राप्ति यही लक्ष्य रहेगा तब वह भ्रष्ट बनती है। आज की राजनीति इसका प्रतीक है। स्वातंत्र्यपूर्व काल की राजनीति विधायक देश के आजादी के

---

88. नरनारायण राय - 'आधुनिक हिंदी नाटक एक यात्रा दशक', पृ.273
89. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.23

लिए भी आज की राजनीति कुकर्म को छिपाने का साधन है। साहित्यकारों ने इस पर करारा व्यंग्य किया है। गिरिराज किशोर की नाटयकृतियों में इसका विस्तार से चित्रण हुआ है। उसपर हम विचार करेंगे। राजनीति के संदर्भ में डॉ.माधवी सोनटक्के मंतव्य दृष्टव्य है, ''राजनीति मनुष्य को श्रेष्ठ और सुंदर बनाने के लिए निर्माण हुई थी किंतु वर्तमान युग में वह केवल भ्रष्ट ही नहीं रही बल्कि अधःपतित बन चुकी है। यह वृत्ति सनातन है क्योंकि अंधे धृतराष्ट्र का शासन केवल द्वापर युग का ही नहीं बल्कि वर्तमान का भी है।''[90] इससे स्पष्ट है राजनीति में षड़यंत्र, पाखंड, हथकंडे, झूठी चाले, प्रलोभन, दृष्टता अन्याय आदि का खुले आम प्रयोग होता है। राजनीति में स्वार्थ और सत्ता महत्त्वपूर्ण होती है। राजनीति में न कोई तत्व होता है और न सिद्धांत। भ्रष्ट राजनीति के भ्रष्ट रूप को उजागर करती हुई गांधारी सुयोधन को सुनाती है, ''राजनीति का खेल वैदिक मंत्रों की शुद्धता से नहीं खेला जाता।''[91]

इस प्रकार भ्रष्ट राजनीति पर भी गिरिराज किशोर के 'प्रजा ही रहने दो' इस नाटक में प्रकाश डाला है।

3.9 भ्रष्टाचार -

आजादी के साथ विकास की गंगा देश में बहने लगी, विकास की योजनाएँ शुरू होने के साथ कई समस्याएँ निर्माण हो गई। विकास बनाए भ्रष्टाचार इस नीति का प्रभाव दिखाई देता है। भ्रष्टाचार का सीधा अर्थ भ्रष्ट आचरण, अनैतिक व्यवहार, या गलत कर्म छिपाने के लिए किया गया अनैतिक कार्य अतः धन कमाना, कम श्रम में सफलता पाना, अवैध कर्म छिपाना आदि कारणों से भ्रष्टाचार बढ रहा है। प्रजातंत्र में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। भ्रष्टाचार का अर्थ अपने पद अथवा व्यक्ति के दबाव में अनुचित काम करवाना, सत्ता एंव सामर्थ्य का दुरूपयोग करवाना। आज का भ्रष्टाचार भ्रष्ट अधिकारियों की प्रवृत्ति को दर्शाता है। डॉ.जाधव कहते है - ''जिस समाज में भ्रष्टाचारी अधिकारी होते है वह समाज

90. डॉ.माधवी सोनटक्के - 'आधुनिक हिंदी - मराठी नाटक',पृ.47

91. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.23

निर्भद कभी नहीं होता। नोकरों में रिश्वत की प्रवृत्ति बढती है।''[92] यह कथन वहाँ यथार्थ लगता है।

आज के साहित्य में इसी घिनौनी प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए उसका प्रभाव्ी रूप में चित्रण किया है। गिरिराज ने अपने साहित्य में भी इस समस्या पर सोचा है - उस पर यहाँ हम विचार करेंगे।

मनुष्य की स्वार्थी मनोवृत्ति ही भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का मुल है। यह प्रवृत्ति समाज को दीमग की तरह कुरेद कर समाज व्यवस्था को खोखला बना रही है। समाज जीवन का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार एवं रिश्वत से मुक्त नहीं रहा। इसीकारण आधुनिक हिंदी साहित्यकारों ने नैतिकता, मानवीमूल्य को समाप्त करनेवाले भ्रष्टाचार एवं रिश्वत को अपने साहित्य में चित्रित किया है।

गिरिराज किशोर के 'घास और घोड़ा' में प्रधान का बेटा जब विमला के पति का कत्ल कर देता है तो उसे बचाने के लिए प्रधान दरोगा के पास जाकर अपने बेटे को बचाने की प्रार्थना करते हुए भ्रष्टनीति को अपनाता है। तब दरोगा कहता है। ''प्रधान जी, मुझे तो दो-दो काम एक साथ करने पडेंगे। आपके कातिल बेटे को बचाना और उस बेगुनाह को फाँसीपर चढवाना..... दो काम तो दो ही मिलकर कर सकते है। मैं और वह......।''[93]

दरोगा जेब की तरफ इशारा करता है। प्रधान जेब में से धीरे-धीरे सब पैसे निकालकर मेज पर रख देता है। दरोगा सब पैसे उठाकर अपनी जेब भर कर प्रधान के बेटे को छोड़ देता है। पुलिस की भ्रष्टता और रिश्वत के कारण गुनहगार छूट जाते है और बेकसुर को सजा भुगतनी पडती है।

'जुर्म आयद' इस नाटक में भी आशा के आत्महत्या करने पर डॉक्टर झुठा सर्टिफिकेट देने को तैयार होते है। वे कहते है -''इट इज ए नेचुरल डेथ, जस्टिस शिवचरण मैं सर्टीफिकेट दुँगा..... देखता हुँ मेरे सर्टीफिकेट को कौन

92. डॉ.बी.एस.जाधव - 'प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना', पृ.183

93. गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा',पृ.76

चेलेंज करेगा।''[94] अपने झुठे सर्टीफिकेट को भी बहुत विश्वास और चेलेंज के साथ डॉक्टर देते है। यहाँ डॉक्टर की भ्रष्टता नजर आती है। यहाँ स्पष्ट है भ्रष्टाचार राजनीतिक नेता, पुलिस, डॉक्टर जैसे लोग कर रहे है। जो अपना अवैध कार्य छिपाना चाहते है। आम आदमी भ्रष्टाचार को नहीं अपनाता मगर उससे शोषित, पीड़ित रहा है। मेडिकल रिपोर्ट जैसे आदर्श कार्य में भ्रष्टाचार हो, पुलिस झुठी रिपोर्ट बनवाएँ तो किसपर भरोसा होगा। आज सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार हावी होने के कारण इसे रोकनेवाला कोई नहीं, आज व्यंग्य से कहा जाता है 'भ्रष्टाचार ईश्वर है जो सर्वत्र है मगर दिखाई नहीं देता। यही कडवी सच्चाई है।

3.10 ईश्वर पर विश्वास -

धर्म भारतीय समाज जीवन की नींव है। धर्म ईश्वर भगवान-पाप-पुण्य में समाज विश्वास रखता है। चाहे इसे 'अंधश्रद्धा' कहा जा सकता है भारतीय लोगों में ईश्वर की सत्ता पर विश्वास है। आज भी वैज्ञानिक सभ्यता में भी उस अज्ञात सत्ता के प्रति विश्वास की भावना रखना इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है। चाहे आज का व्यक्ति कितना ही विज्ञाननिष्ठ हो जाये परंतु वह ईश्वर में विश्वास रखता है। अनपढ़ ही नहीं बल्कि पढे-लिखे लोग भी ईश्वर में अपनी आस्था एवं श्रद्धा रखते है।

गिरिराज किशोर के 'घास और घोड़ा' में इसका चित्रण किया है। जज की पत्नी जज साहब की नीतिपर, प्रकाश डालते हुए टाईपबाबू से कहती है ''आप बैठ जाइए टाईप बाबू आपको तो मालूम है, जज साहब हमेशा कोई जरूरी फैसला लिखवाने से पहले पूजा किया करते है। वे ईश्वर से डरनेवाले इन्सान है..... किसी पर अन्याय नहीं करना चाहते....। किसी की बात नहीं सुनते, सिर्फ आत्मा की बात सुनते है।''[95] लगता है पढा लिखा व्यक्ति भी भगवान पर भरोसा रखकर कार्य करता है।

यहाँ स्पष्ट है इतने बड़े जज होने पर भी ईश्वर में विश्वास रखते है।

---

94. गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.39
95.गिरिराज किशोर - 'घास और घोड़ा',पृ.20

ईश्वर की पूजा किये बिना कार्य सुरू नहीं करते यहाँ ईश्वर के प्रति श्रद्धा का चित्रण हुआ हे।

गिरिराज किशोर के 'जुर्म आयद' में पुलिस दरोगा उम्मेदी पर अत्याचार करता है तब उम्मेदी भगवान से कहती है "तुने मुझे क्यों नहीं उठा लिया खरे भगवान।"[96] उम्मेदी अपनी बुरी हालत में भगवान को पुकारती है। भगवान के पास अपनी ही मौत की प्रार्थना करती है। इससे पता चलता है कि काम अच्छा हो या बुरा पहले भगवान को याद किया जाता है। भगवान संकट में सहाय्यता करता है इसी श्रद्धा के कारण उम्मेदी ईश्वर को पुकारती है। सभी सुख दुःख का पर्याय भगवान को ही माना जाता है। इसी श्रद्धा और विश्वास को गिरिराज किशोर ने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

3.11 जाति का प्रभाव -

भारतीय समाज जीवन का आधार जाति-धर्म व्यवस्था है। जो कभी समाप्त नहीं होती। नहीं जाती उसे 'जात' कहते। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके माथेपर जाति का टीका लगाया जाता है, जो मानव निर्मित है। आज जातियता के बंधन ढ़िले पडे है, विजातीय विवाह के कारण जातीय संघर्ष कम हो रहा है। परंतु प्राचीन काल से चली आयी मान्यता, तुरंत समाप्त नहीं होगी। ऐसा लगता है। व्यक्ति के जन्म से ही जाति, धर्म, कुल आदि साथ जुड़ जाता है। हर व्यक्ति को अपनी जाति का अभिमान होता है। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को हीन मानकर अपमानीत करते है।

'प्रजा ही रहने दो' इस नाटक में विदुर जी कर्ण को जाति के आधार पर अपमानित करता है। गांधारी के मतानुसार शिशुपाल, कृष्ण के न वंश, न जाति और न कुल.... का समझते है। यहाँ कृष्ण कि जाति पर भी प्रश्नचिन्ह लगाया गया है।

इस नाटक में द्रौपदी भी इसी पीड़ा से ग्रस्त है। द्रौपदी कुंती से कहती है, "माँ आप जानती है मैं कौन हुँ? न मेरी कोई जाति है, न मैं किसी के

96.गिरिराज किशोर - 'जुर्म आयद',पृ.13

वीर्य से जन्मी हुँ। धरती की गोद में उग आनेवाली घास की कोई वंश-परंपरा और जाति नहीं होती।''[97] यहाँ द्रौपदी अपने आपको घास कहकर उसकी वंश, परंपरा और जाति न होने की बात को स्पष्ट कह देती है। कर्ण की जाति उसका भुजदंड रहा है। इसलिए जाति की अपेक्षा कर्म, ज्ञान को महत्व देना जरूरी है। सामाजिक समता, एकता की स्थापना के लिए जातीयता नष्ट होनी चाहिए।

3.12 रूढी-परंपराएँ -

भारतीय समाज रूढ़िप्रिय रहा है। प्राचीन मान्यता प्रथा का कडाई से पालन करता है। अपना सबकुछ खर्च करके प्रथाओं को निभानेवाला यह समाज कभी-कभी प्रथा-परंपरा के कारण शोषित बना है। जो प्रथाएँ मानवहित में नहीं उसे त्यागना चाहिए, परंतु अज्ञान कमजोर मानसिकता, डर की भावना, पाप की संकल्पना आदि के कारण प्रथाओं का विरोध नहीं होता परिणामतः न चाहते हुए भी उसका पालन किया जाता है। साहित्य में ऐसी प्रथाओं की स्थिति एवं गति पर प्रकाश डाला है।

समाज में सदियों से रूढी-परंपराएँ चली आ रही है, धर्म, जाति, रूढी, परंपरा में बदलाव नहीं आया है। ये सब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है। जो पहले से चली आ रही है। उन्हीं रूढी-प्रथा-परंपरा को आगे चलाया जाता है। विवाह ऐसी ही एक प्रथा है जो सदियों से चलती आ रही है। भारतीय समाज व्यवस्था में विवाह को बड़ा महत्व दिया गया है।

गिरिराज किशोर के 'घास और घोड़ा' में पंडित ख्यालीराम के बेटे द्वारका के साथ प.हजारीलाल अपनी बेटी का विवाह करने का सोचते है। रिश्ता तय करते है। पर दोनों भी लडका-लडकी देखने का रिवाज निभाते हुए कहते है कि ''राजा दशरथ और माता कौशल्या सीता को कब देखने गये थे।''[98]

हमारे भारतीय समाज में घर आए अतीत को भगवान कहा जाता है, इसीकारण ख्यालीराम अपने घर आये अतिति पं.हजारीलाल की खातीरदारी

97. गिरिराज किशोर - 'प्रजा ही रहने दो', पृ.132
98. गिरिराज किशोर - 'घास और घोडा', पृ.40

करने के लिए चाय भिजवाने को कहते है तब पं.हजारीलाल कहते है कि "मास्टरजी, जब संबंध तय हो गया, फिर बेटी के घर की चाय पीकर क्या नर्क में जाना है? अब आज्ञा दे....?"[99] भारतीय समाज की परंपरा है की शादी तय होने पर बेटी के घरवाले अपनी बेटी के ससुराल का पानी तक नहीं पीते पंडित हजारीलाल का चित्रण रीतिरिवाज निभानेवाले पिता के रूप में हुआ है।

यहाँ स्पष्ट है, विवाह जैसे पवित्र संस्कारों में भी पढे लिखे लोग प्रथाओं को मानते है आज उसमें बदलाव आया है, जनम कुंडली न देखकर खून की जाँच करनेवाले भी युवक-युवती दिखाई देते है। परंतु अधिक मात्रा में उनका चित्रण नहीं हुआ है। धार्मिक, सामाजिक प्रथाओं को मानना, हमारी विरासत तथा मनोवृत्ति बनी है। विज्ञान के बलपर, अंधश्रध्दा निर्मूलन के सहारे ऐसी प्रथाओं को नकारा है मगर जादा सफलता नहीं मिली।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में ग्रामीण समाज और शहरी समाज दोनों का चित्रण किया है। साथ ही गरीब लोगों की पीड़ा को भी प्रकट किया है। इन्होंने मनुष्य जीवन के हर पहलू पर प्रकाश डाला है। भारतीय समाज व्यवस्था के अनुसार संयुक्त परिवार की परंपरा रही है, लेकिन इन नाटकों में पारिवारिक कलह के कारण संयुक्त परिवार का विघटन होता नजर आता है। पारिवारिक संबंधों में माता-पिता और संतान के संबंधों को आदर्श एवं प्रभावी माना है। जो संतान के लिए माता-पिता और माता पिता के लिए संतान कुछ भी करने को तैयार होते है। कर्ण, प्रधान, इंद्रराव, उम्मेदी आदि पात्र इसी प्रकार के है। नारी जीवन में नारी के माता रूप को श्रेष्ठ माना है क्योंकि माँ ही बच्चों को अपने आँचल में छिपाकर उनके हर दुःख को दुर करती है। बच्चों के लिए ममता, वात्सल्य के साथ दुर्गा, काली का रूप धारण कर अपने बच्चों की रक्षा करती है। इन नाटकों में नारी का जो चित्रण हुआ है वह बहुत यथार्थ है।

आज के आधुनिक युग में भी नारी की दयनीय स्थिति है। नारी उच्च

---

99. गिरिराज किशोर - 'घास और घोडा',पृ.43

वर्ग की हो या निम्न सब स्तर पर उसका शोषण किया जाता है। उसपर अन्याय किया जाता है। पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ उसपर समाज, परिवार पति, न्याय, कानून व्यवस्था आदि सभी जगह अत्याचार किये जाते है। नारी प्रतिशोध के कारण विद्रोह करती है लेकिन बहुत कम मात्रा में उसमें सफल हो पाती है। गिरिराज किशोर ने जो अपने नाटक में नारी का वर्णन किया वह सत्य है। मुझे लगता है, कि नारी में कुछ सुधार होना चाहिए उसमें क्रांति की भावना आनी चाहिए, साथ ही अपने हक्क और अधिकार के लिए, अन्याय, अत्याचार, शोषण के खिलाप आवाज उठानी चाहिए। इन नाटकों में परंपरागत चली आयी रूढ़ी, परंपराओं का चित्रण हुआ है।

आज समाज में हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार है। राजनीति तो भ्रष्टाचार के बिना हो ही नहीं सकती। भ्रष्ट नीति का पर्दाफाश करने का प्रयास इन नाटकों में किया है। समाज के सामने भ्रष्टाचार को उजागर करना ही लेखक का उद्देश है। गिरिराज समाज सुधार का या समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाने का संदेश अपने नाटकों के जरिए देना चाहते है। इनके नाटक अच्छी समाज व्यवस्था स्थापित करने का संदेश देते है।

विवेच्य नाटकों में समाज-जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सभी स्थितियों को अपने साहित्य के द्वारा समाज के सामने रखा है। समाज विश्वव्यापक है। जहाँ जीवन है वहाँ संबंध है और जहाँ संबंध है वहाँ समाज है। इस अर्थ में प्रत्येक मनुष्य सामाजिक है। मानव जीवन के बाहय-भीतर का वर्णन चित्रण इनके साहित्य में हुआ है। जीवन का निरंतर गतिशील रहना एवं परिवर्तनशील होना ही वास्तव में जीवन माना गया है। समाज से ही साहित्य बनता है, और साहित्य में समाज का ही वर्णन किया जाता है।

गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में पारिवारिक जीवन में बनते बिगड़ते रिश्तों का यथार्थ वर्णन किया है। भारतीय संस्कृति में परिवार के इस विस्तृत दृष्टिकोन को अपनाते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम'की भावना को महत्त्व दिया

है। दांपत्य जीवन में मानसिक कुंठा का प्रभावी चित्रण किया है। पारिवारिक संबंधों में माता-पिता, संतान, भाई, बहन, सभी संबंध महत्त्वपूर्ण है। इन सभी संबंधों में प्रेम, ममता, वात्सल्य, लगाव, अपनापन और सुरक्षा का चित्रण बडे ही सुक्ष्म रूप से किया है।

नारी जीवन की व्यथा को गिरिराज जी ने बड़े मार्मिकता से हमारे सामने रखा है। जो आज की यथार्थ स्थिति हैं आज भी समाज में नारी को वस्तु समझा जाता है। नारी पर अन्याय, अत्याचार किये जाते है। उसकी मजबूरी का फायदा उठाया जाता है। नारी के मन की द्वंद्वात्मक स्थिति, उसकी असहायता, अवैध संबंध, प्रेम में असफलता, विद्रोही भावना, बदले की भावना आदि का चित्रण किया है। समाज में नारी की स्थिति को तारा, नीरा, विमला, वती, द्रौपदी, सुलभा, उम्मेदी, आशा के माध्यम से हमारे सामने रखा है। जो माँ, बहन, बेटी, पत्नी बनकर अपने ऊपर होनेवाले अन्याय को सहते हुए अपना फर्ज निभाती है।

गिरिराज किशोर ने अपने 'प्रजा ही रहने दो' और 'चेहरे-चेहरे किसके चेहरे' नाटक में आम आदमी के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। प्रजा का सामान्य अस्तित्व, उसका शोषण, दमन, उसकी निराश, करूणा मन की कुंठा और उलझन का चित्रण द्रौपदी और प्रहरियों के माध्यम से किया है। सत्ता की लालसा वर्तमान जीवन का कटू यथार्थ है, भ्रष्ट राजनीति आज के युग में केवल भ्रष्ट ही नहीं रही बल्कि अधःपतित बन चुकी है। भ्रष्ट राजनीति के भ्रष्ट रूप को उजागर किया है।

पुलिस और कानून व्यवस्था तो समाज में लोगों की सुरक्षा के लिए होती है लेकिन ये ही जनता पर अन्याय अत्याचार करते है। बिगडती समाज व्यवस्था तथा पुलिस की नीति को चित्रित किया है। रक्षक पुलिस भक्षक बनी है। समाज में फैले भ्रष्टाचार और रिश्वत को भी इन नाटकों के जरिए समाज के सामने रखा है, जो समाज को दिमग की तरह कुरेद रहे है। ये दो बिमारियाँ समाज के सभी क्षेत्रों में फैली नजर आती है।

जाति, धर्म, रूढ़ी, परंपरा, ईश्वरीय विश्वास आदि का समाज पर

प्रभाव है। हर व्यक्ति उसे अपने ढंग से निभाता है। गिरिराज किशोर ने अपने नाटकों में समाज-जीवन के सभी पहुलओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। लगता है आधुनिक समाज जीवन की तस्वीर इन नाटकों में स्पष्ट चित्रित हुई है। बहुआयामी नाटककार गिरिराज है।

****